# प्रस्थिति—चार

[ राजस्थान के सृजन-शील शिक्षकों का कहानी संग्रह ]

सम्पादक

र इक़बालसिंह : प्रेम सक्सेना

शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए

कल्पना प्रकाशन

कृष्ण कुंज, बीकानेर

२६५
कहानी

# आमुख

राष्ट्र-निर्माण कार्य में शिक्षक की भूमिका सर्वोच्च है। 
शिक्षक के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने की दृष्टि से प्रतिवर्ष 
दिवस का आयोजन करता है।

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा विभाग राजस्थान की ओर 
पुण्य दिवस पर शिक्षक अभिनन्दन समारोह आयोजित किया जाता है 
पुरस्कृत शिक्षकों को राज्य सरकार की ओर से पुरस्कार वितरि
जाते हैं, इसके अलावा विभाग राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों की 
त्यिक कृतियों के संकलन भी प्रकाशित करता है। शिक्षक दिवस पर 
से १६७१ तक हिन्दी, उर्दू व राजस्थानी की कुल मिलाकर १८ 
प्रकाशित की जा चुकी हैं। प्रसन्नता की बात है कि भारत भर मे 
इस योजना का सर्वत्र स्वागत हुआ है तथा साहित्यिक अभिरु
शिक्षकों को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली है।

राजस्थानी भाषा साहित्य नित्य प्रति प्रगति पर है। प्रा
साहित्यकार व सृजनशील शिक्षक भी राजस्थानी भाषा में ले
ओर प्रवृत्त हुआ है। राजस्थानी भाषा मे साहित्य सृजन के क्षेत्र में 
के योगदान से परिचित कराने की दृष्टि से विभाग ने उचित सम
राजस्थानी का इस बार एक अलग संकलन प्रकाशित किया जाये।

आशा है कि शिक्षक दिवस पर प्रकाशित इन पुस्तकों—प्र
(कविता संग्रह), प्रस्थिति-४ (कहानी संग्रह), सन्निवेश-५ (विविध
संग्रह) तथा माला (राजस्थानी भाषा में विविध रचना संग्रह) क
स्वागत होगा।

राजस्थान के प्रकाशकों ने इस योजना में आरम्भ से ही पू
सहयोग प्रदान किया है और इन प्रकाशनों को सुन्दर बनाने में 
किया है। इसी प्रकार शिक्षक लेखकों ने भी अपनी रचनाएं भे
विभाग को सहयोग प्रदान किया है। इसके लिए लेखक तथा प्र
दोनों ही धन्यवाद के अधिकारी हैं।

एल० एन० गुप्ता
निदेशक
प्राथमिक एवं माध्यमिक शि
राजस्थान, बीकानेर

शिक्षक दिवस, १६७२

# प्राक्कथन



शायद कहानी अन्य विधाओं की अपेक्षा जीवन के ज्यादा निकट और उसे अधिक गहराई से प्रस्तुत करने वाली विधा—माध्यम है। अगर कहानीकार अपने अनुभव को अकृत्रिम होकर सहज अभिव्यक्ति देने में सफल हो जाता है तो कोई वजह नहीं है कि उसका सृजन पाठक के लिये अजनबी या बेगाना हो। दिक्कत तब उठती है जब रचनाकार प्रामाणिकता का दावा करता है, पर वास्तविकता यह होती है कि न तो उसका विषय परिचित लगता है, न उसकी अभिव्यक्ति सम्प्रेषण के अहं उत्तरदायित्व को निभा पाती है।

प्रस्तुत कहानियों में कोरी कलात्मकता का निश्चय ही अभाव है, और ये किसी विशिष्ठ 'वाद' से प्रतिबद्ध भी नहीं हैं। बहुत सीधी, सच्ची और सहज इन कहानियों में जीवन अपने विविध आयामों और स्तर पर आपको स्पर्श करता हुआ मिलेगा। इनके बारे में हमारे लिए क्या इतना कहना ही पर्याप्त नहीं?

गुर इकबालसिंह, प्रेम सक्सेना

# प्राक्कथन

शायद कहानी अन्य विधाओं की अपेक्षा जीवन के ज्यादा निकट और उसे अधिक गहराई से प्रस्तुत करने वाली विधा–माध्यम है। अगर कहानीकार अपने अनुभव को अकृत्रिम होकर सहज अभिव्यक्ति देने में सफल हो जाता है तो कोई वजह नहीं है कि उसका सृजन पाठक के लिये अजनबी या बेगाना हो। दिक्कत तब उठती है जब रचनाकार प्रामाणिकता का दावा करता है, पर वास्तविकता यह होती है कि न तो उसका विषय परिचित लगता है, न उसकी अभिव्यक्ति सम्प्रेषण के अहं उत्तरदायित्व को निभा पाती है।

प्रस्तुत कहानियों में कोरी कलात्मकता का निश्चय ही अभाव है, और ये किसी विशिष्ठ 'वाद' से प्रतिबद्ध भी नहीं हैं। बहुत सीधी, सच्ची और सहज इन कहानियों में जीवन अपने विविध आयामों और स्तर पर आपको स्पर्श करता हुआ मिलेगा। इनके बारे में हमारे लिए क्या इतना कहना ही पर्याप्त नहीं ?

गुर इकबालसिंह, प्रेम सक्सेना

# अनुक्रमणिका

—o—

# शहर जो एक पागलखाना हो गया

डॉ. राजानन्द

वह फिर सोच रहा है कि अपने पुराने रास्ते पर चलने लगे। जिस्म की थकान तो जा चुकी, लेकिन लगता है कि मन अन्दर धसक गया है, दिमाग किसी हिस्से से टूट कर लटका हुआ है।

वह उसे किसी तरह से काट कर अलग करना चाहता है। वह कटी उगली की तरह जरा से सहारे से जुड़ा है, टपकता नहीं।

क्या हो गया था उसे ? उसे क्यों सूझा कि वह उस दल-दल मे अपने को डाल दे, जो गीली थी (वह जानता था), जो श्रादम गहराई की थी, (इसका भी उसे पता था)।

कितने-कितने लोग उन दिनों में उसको चारों तरफ
थे, और एक ही बात कहते थे—तिवारी जी, आप खड़े हो जा
में आपकी जीत तय है ।

क्या वह उन लोगों के दबाव से खड़ा हुआ ?

वह अपने को टटोलता है । उसे अब लगता है कि
को धक्का पहुँचाने के दोषी वे लोग ही नहीं है । वह भी दोषी
क्या जरूरत थी ऐसा निर्णय लेने की ? वह अच्छा खासा ज
उद्देश्य मे लगा हुआ था, एक मिशन था, उसके चारों तरफ जो
मान्यताएँ लोगों के लिये जीने के आदर्श बन रही हैं, वह उनका
रहा था । सेवा और शुद्धिकरण का महं कार्य कर रहा था, व
झोंके मे दूर हो गया ।

वह अब क्या रह गया ?

एक हारा हुआ खिलाड़ी, जिसने अपने नाम की कमाई
करना चाहा था, पर वह घाटे का सौदा बन गई ।

तिवारी को अब अपना चेहरा सिकुड़नों भरा दीखने ल
लगता है उसके चेहरे पर आड़ी-तिर्छी लकीरें खींच दी गई है जैसे
एक खूबसूरत चित्र पर पैन से काट-पीट की लकीरें खींच दी हों ।

"पैसे की आप क्यों चिंता करते हैं तिवारी जी, सेठ दि
चौथेलाल, और पता नही कितने-कितने लोगों ने कहा है, तिवारी
खड़ा करो, हम रुपया बहा देंगे । "

दूसरा झुण्ड आता और कहता—तिवारी जी, आप हां तो
आधा शहर आपके चुनाव मे कार्यकर्ता बन जायेगा ।

तिवारी अपनी सेवाओं का, और अपनी प्रतिष्ठा का आक
और उसे लगता कि लोगों का कथन गलत नहीं है, वह अप
श्रीधर दोनों को हरा सकता है ।

आने वाले अपनी तरह से चुनाव क्षेत्र का विश्लेषण करते
थे और चाहे वह जाति के आधार पर, मजदूरों और नौकरी-पेश
वालों के आधार पर, वे यह स्थापित कर देते कि आपकी कम
पन्द्रह हजार मतों से जीत होगी ।

इतने वार्तों से दुर्यंत पाकर तिवारी जब अपने कमरे मे

और रात के सुनसान में उन मन-नक्शों को किसी बनाई जाने वाली इमारत के नक्शे की तरह सामने फैला कर अध्ययन करता तो वह भी आश्वस्त हो जाता कि जीत उसी की हो सकती है।

हारने के बाद उसे अब लगता है कि वे लोग ही दोषी नहीं थे वह भी था, वही था, क्योंकि वह भी उसी तरह से हवाई बागों में घूमने लगा था जैसे नक्शे को सामने रख कर इमारत बन जाने का सुख भोगने वाला कोई बीच का आदमी। लालच और महत्वाकांक्षा ही तो है, खुल गई पिटारी, निकल पड़े पीले साप।

तिवारी ने अपने इस निर्णय को कई कोनों से सही बैठाया। आखिर जिस शान्ति मिशन और गांधी प्रतिष्ठान के अन्दर वह काम कर रहा है वहाँ कौन सी कम धर-पटक है। आप डरी रहें तो डरी रहें वरना ढाई में पेट का क्या बचना ? वह जानता है कि किस तरह से केन्द्रीय कार्य-कारिणी में पहुँचा है। ईमानदारी का नाम वहाँ भी उसने सूँघा था लेकिन जो चीज कहीं हो ही नहीं उसके मिलने का क्या सवाल ? फिर भी वह आदतनुमा उसके रंग में रंग गया।

तिवारी का अच्छा-खासा ऊँचा कद है, चेहरे का नाक-नक्श तीखा और खींचने वाला है, पैरों-हाथों की मछलियाँ और सीने की चौड़ाई उसे खास नेता की तरह प्रस्तुत करती है।

शहर के दो-तीन मशहूर संगठन और जातीय तथा धार्मिक संस्थाओं के पदाधिकारी भी अपने समर्थन को प्रस्तावित करने आए। अब तिवारी के दिमाग में खासी तौर पर निश्चित हो गया कि उसे खड़ा होना है तब वह अलग-अलग मुस्लिम बस्ती वाले इलाकों के प्रभावी व्यक्तियों से मिला, हरिजनों को दूसरों के जरिये तैयार किया।

पूरा चुनाव माहौल बना कर उसने नॉमीनेशन फार्म भरा और चुनाव की चरखी पर चढ़ गया। तसवीर वाले नाम के पोस्टर, सलदानाबाद में अबीर के पर्चे, जगह-जगह मीटिंग करने का दौर तेजी से चल पड़ा, कनौडिया, श्रीधर और रामकृष्ण तिवारी के चुनाव-चिन्हों की दौड़ शुरू हो गई।

कनौडिया-स्वदेशीय ग्लास फैक्टरी का मालिक, वैसे अहमदाबाद में दो सूती मिलें।

कामरेड श्रीधर रेलवे वर्कर्शॉप यूनियन का सेक्रेटरी। पक्का लाल नेता। बोले तो लफ्जों और वाक्यों से आग की चिन्गारी फूटे।

कनौड़िया की गाड़ियों पर गाड़ियाँ दौड़ रही थी। ग्लास फैक्टरी के मजदूरों को स्पेशल बोनस घोषित करके उन्हें जुलूस निकालने और चुनाव प्रचार करने के लिये दैनगी पर रख लिया गया था। ब्लैक मनी को बहाए जाने के लिये गुप्त नालियाँ खोल दी गई थी।

श्रीधर अपने मंच में हवा में मुट्ठी चला-चला कर कहता- भाइयो, आप अपने वोट की कीमत पहिचानो : पूँजीपतियों और सरमाया दारो को ढहाने का यही मौका है। पाँच साल बाद आपको अवसर मिला है कि मजदूरों के हक के लिये लड़ने वाले, मध्यम वर्ग के बाबू लोगों की समस्याओं को पूरे जोर-दबाव से रखने वाले, तांगे-रिक्शे वालों के साथी को आप जिता कर नई क्रान्ति ला सकते हैं। यह तिवारी जी आपके दुःख दर्द को नहीं समझ सकते, जो भूमिदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान की बात कर सकते है वह वोट दान के लिये भी हाथ पसार सकते हैं, पर इनमें पूछिये क्या इस तरह से इन्कलाब आता है ? कनौड़िया जैसे पूंजीपति क्या अपने फायदों को आसानी से आप को लुटा देंगे। हक पाने के लिये लड़ना पड़ता है, वह खरीद सकता है हम गरीबों को और हमें ही आपस मे लड़ा सकता है। इसलिये मैं आप से कहता हूं आप मुझे वोट दीजिये-कामरेड श्रीधर को

और तभी तीन-सौ चार-सौ आदमियों में से दस-पन्द्रह ताली पहले बजनी शुरु होती फिर गड़गड़ाहट शुरू हो जाती।

तिवारी सीधे-सादे अपनी सेवाओं का बखान करता। गांधी जी के सिद्धान्तों को भाषणों मे बखानता। मुसलमानों, हरिजनों को गांधी जी की सेवाओं की याद दिलाता और हिन्दुओं को गीता के श्लोक सुनाता:

लगातार घूमने और मिटिंगें करने से उसका गला बैठ गया था, चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगी थी। कार्यकर्त्ताओं की इधर-उधर की शिकायतें, यहां वहां की घसीटा-घसीटी से उकता गया था। कहां वह शान्ति मिशन का शान्त-शान्त आराम देह काम और कहां चुनाव की भाग दौड़। उसे अब लगा कि वह आकंठ दलदल मे फंस गया-पीछे हटे तो मुश्किल, चलाये तो धार पर चढ़ा हुआ चलाना पड़ेगा ही।

कनौड़िया का सहारा या तो रुपये थे या देश के नामी नेता। उसके चुनाव अभियान को चलाने वाले सम्पत राम ने इस कार्य को ठीक उसी तरह से चलाने का कार्यक्रम निश्चित कर लिया था, जैसे किसी नये औद्योगिक संस्थान को जमा रहे हों। वह बहुत अनुभवी थे। इस कार्य से उन्होंने वोटर्स की पाकेटस और टुकड़ियों का अन्दाजा लगा लिया था और यह भी, कि वह किन के जरिये इन को मक्खियों के झुंड की तरह मत पेटियों में डलवायेंगे। उन्होंने शहर के दो महन्तों के यहां आठ-आठ हजार रुपये दान देकर उनको अपने मंच पर लाने का इन्तजाम कर लिया था। दोनों महंतों की आवभगत फूलमालाओं से की जाती थी, पहले वह श्री राम की जय जनता से बुलवाते थे, फिर धर्म के संकट में होने की दुहाई देकर धर्म पालक सेठ कनौडिया को मत देने को कहते थे। सेठ कनौडिया की कार जहां भी चुनाव मिटिंग करने जाती सैकड़ों आदमी उनका भाषण सुनने जाते।

जैसे-जैसे तारीख नजदीक आती गई, प्रचार अभियान तेज होता गया। शहर इतना ध्वस्त, शोरगुल वाला और सजाधजा हो गया जैसे अपना जन्मोत्सव मना रहा हो। लोगों की दीवारें, न चाहते हुए भी, पोस्टरों से अट गई। तांगे वाले, मोटर-स्कूटर वाले और लाउडस्पीकर वालों के किराये बढ़ गये। छापाखाने वाले, पोस्टर बनाने वाले पेण्टरों ने दूसरे सारे काम रोक दिये। कार्यकर्त्ताओं की घर की रोटियां बचने लगीं, चुनाव भंडारे सेठ कनौड़िया और तिवारी की तरफ से खुल गये। सेठ रिणमल और सेठ चौकेलाल कनौड़िया को टक्कर देकर इसलिये भी धराशाही करना चाहते थे कि शीशे की फैक्टरी का लाइसेन्स लेने में कनौडिया ने इसको मात दी थी, उनको बहलाने पर भी अब कनौडिया चीनी बर्तन का कारखाना खोल रहा है, हालांकि दोनों ने कारखाने के लिये प्रार्थना पत्र दिये हैं-पर दोनों को अपने हाथों के छोटा होने का पता है।

धीरे-धीरे चुनाव के साथ साफ दोहरी टक्कर सामने आ गई। सट्टे बाजार में कनौडिया के भाव और तिवारी के भाव में उन्नीस-बीस का फर्क था। तिवारी की हवाई बगिया उड़ गई थी और संघर्ष की ठकेल उसे मशीन बनाये हुये थी। अलग-अलग उम्मीदवारों के समर्थकों पर जोश का

कामरेड श्रीधर रेलवे वर्कर्सा यूनियन का सेक्रेटरी। पक्का लाल नेता। बोले तो लफ्ज़ों और वाक्यों में आग की चिन्गारी फूटे।

कनोड़िया की गाड़ियों पर गाड़ियाँ दौड़ रही थीं। ग्लास फैक्टरी के मजदूरों को स्पेशल बोनस घोषित करके उन्हें जुलूस निकालने और चुनाव प्रचार करने के लिये दैनगी पर रख लिया गया था। ब्लैक मनी को बहाए जाने के लिये गुप्त नालियाँ खोल दी गई थी।

श्रीधर अपने मंच से हवा में मुट्ठी चला-चला कर कहता–भाइयो, आप अपने वोट की कीमत पहिचानो : पूँजीपतियों और सरमायादारों को ढहाने का यही मौका है। पाँच साल बाद आपको अवसर मिला है कि मजदूरों के हक के लिये लड़ने वाले, मध्यम वर्ग के बाबू लोगों की समस्याओं को पूरे जोर-दबाव से रखने वाले, ताँगे-रिक्शे वालों के साथी को आप जिता कर नई क्रान्ति ला सकते हैं। यह तिवारी जो आपके दुःख दर्द को नहीं समझ सकते, जो भूमिदान, सम्पतिदान, जीवनदान की बात कर सकते हैं वह वोट दान के लिये भी हाथ पसार सकते हैं, पर इनसे पूछिये क्या इस तरह से इन्कलाब आता है? कनोड़िया जैसे पूँजीपति क्या अपने फायदों को आसानी से आप को लुटा देंगे। हक पाने के लिये लड़ना पड़ता है, वह खरीद सकता है हम गरीबों को और हमें ही आपस में लड़ा सकता है। इसलिये मैं आप से कहता हूं आप मुझे वोट दीजिये–कामरेड श्रीधर को और तभी तीन-सौ चार-सौ आदमियों में से दस-पन्द्रह ताली पहले बजनी शुरू होती फिर गड़गड़ाहट शुरू हो जाती।

तिवारी सीधे-सादे अपनी सेवाओं का बखान करता। गांधी जी के सिद्धान्तों को भाषणों में बखानता। मुसलमानों, हरिजनों को गांधी जी की सेवाओं की याद दिलाता और हिन्दुओं को गीता के श्लोक सुनाता:

लगातार घूमने और मिटिंगें करने से उसका गला बैठ गया था, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी थीं। कार्यकर्त्ताओं की इधर-उधर की शिकायतें, यहाँ वहाँ की घसीटा-घसीटी में उलझा गया था। कहाँ वह शान्ति मिशन का शान्त-शान्त आराम देह काम और कहाँ चुनाव की भाग दौड़। उसे अब लगा कि वह आकंठ दलदल में फंस गया–पीछे हटे तो मुश्किल, चलायें तो धार पर चढ़ा हुआ चलाना पड़ेगा ही।

कनौडिया का सहारा या तो रुपये थे या देश के नामी नेता। उसके चुनाव अभियान को चलाने वाले सम्पत राम ने इस कार्य को ठीक उसी तरह से चलाने का कार्यक्रम निश्चित कर लिया था, जैसे किसी नये औद्योगिक संस्थान को जमा रहे हों। वह बहुत अनुभवी थे। इस कार्य से उन्होंने वोटर्स की पाकेटस और टुकड़ियों का अन्दाजा लगा लिया था और यह भी, कि वह किन के जरिये इन को मक्खियों के झुंड की तरह मत पेटियों मे डलवायेंगे। उन्होंने शहर के दो महन्तों के यहा आठ-आठ हजार रुपये दान देकर उनको अपने मंच पर लाने का इन्तजाम कर लिया था। दोनों महन्तों की आवभगत फूलमालाओं से की जाती थी, पहले वह श्री राम की जय जनता से बुलवाते थे, फिर धर्म के संकट मे होने की दुहाई देकर धर्म पालक सेठ कनौडिया को मत देने को कहते थे। सेठ कनौडिया की कार जहा भी चुनाव मिटिंग करने जाती सैंकड़ों आदमी उनका भाषण सुनने जाते।

जैसे-जैसे तारीख नजदीक आती गई, प्रचार अभियान तेज होता गया। शहर इतना व्यस्त, शोरगुल वाला और सजाधजा हो गया जैसे अपना जन्मोत्सव मना रहा हो। लोगो की दीवारें, न चाहते हुए भी, पोस्टरो से अट गईं। तागे वाले, मोटर-स्कूटर वाले और लाउडस्पीकर वालों के किराये बढ गये। छापाखाने वाले, पोस्टर बनाने वाले पेण्टरो ने दूसरे सारे काम रोक दिये। कार्यकर्त्ताओं की घर की रोटियां बचने लगीं, चुनाव भडारे सेठ कनौडिया और तिवारी की तरफ से खुल गये। सेठ रिणमल और सेठ चोखेलाल कनौडिया को टक्कर देकर इसलिये भी धराशाही करना चाहते थे कि शीशे की फैक्टरी का लाइसेन्स लेने मे कनौडिया ने इसको मात दी थी, उनको बहलाने पर भी अब कनौडिया चीनी बर्तन का कारखाना खोल रहा है, हालांकि दोनो ने कारखाने के लिये प्रार्थना पत्र दिये हैं—पर दोनो को अपने हाथों के छोटा होने का पता है।

धीरे-धीरे चुनाव के साथ साफ दोहरी टक्कर सामने आ गई। सट्टे बाजार मे कनौडिया के भाव और तिवारी के भाव मे उन्नीस-बीस का फर्क था। तिवारी की हवाई बगियां उड गई थी और संघर्ष की ढकेल उसे मशीन बनाये हुये थी। अलग-अलग उम्मीदवारों के समर्थकों पर जोरा का

भूत सवार हो गया था, जैसे उन्हें किसी रियासत की 'पातसाही' मिलने जा रही हो। ऐसा लग रहा था कि शहर का शहर पागल हो गया है, और पागल डाक्टरों की गैर हाजरी में हंगामा बरपा कर रहे हैं।

श्रीधर अपने ठण्डे अभियान को निरुत्साहित होकर चलाता आ रहा था। जैसे किसी औपचारिकता को निभा रहा हो। मजदूरों और कामगर में फौट पड़ गई थी। सम्पत राम ने कुछ यूनियनों के नेताओं को खरीद लिया था, बाकी रिणमल और चौकेलाल के हाथ आ गये थे।

चुनाव के दो दिन रह गये और शहर जो कि एक जीता-जागता पागलखाना बन चुका था, शोर, शराबे, हंगामें और उत्पात से ऊपर तक भर कर बह उठा। टुकड़ों में बटे हुए पागल झंडा लिये, जुलूस पर जुलूस निकाल रहे थे। हरिजनों और छोटी जातियों में रोज शराब की बोतलें बांटी जा रही थीं। तिवारी का कलेजा इन सारे तरीकों को अपनाने की वजह से छलनी होता जा रहा था। वह भड़क कर कभी कहता-आप सब यह क्या कर रहे है, शराब बंटवाना, मजदूरों को खरीदना, अनैतिकता है।

*और तब कोई कहता—तिवारी साहब मोहब्बत और चुनाव में नैतिकता-अनैतिकता क्या? गीता में कृष्ण ने क्या कहा और क्या किया क्या आप जानते नहीं हैं।*

*तभी एक आदमी ने अपने साथियों को अलग हटा कर इत्तला दी कि वह काम पूरा हो गया है।*

*तिवारी ने बात का आखरी हिस्सा पकड़ लिया था, डरकर पूछा—क्या बात पूरी हो गई?*

*कुछ नहीं, मजदूरों के एक नेता का सिर फुड़वाना था, वह काम पूरा हो गया।*

*तिवारी तिलमिला उठा-आप यह सब क्या कर रहे हैं?*

*आपको जिताना है तिवारी जी, याद रखिये अब आप अपने नहीं हैं, हमारे उम्मीदवार हैं।*

*एक जोशीला कार्यकर्ता तभी बस बोल पड़ा—नैतिकता-नैतिकता रखिये आप अपनी अपने पास। अब आप की नहीं हमारी इज्जत मर रही है। हार गये तो हम मुँह दिखाने लायक नहीं रहेंगे अपने दुश्मनों को।*

तिवारी चुप हो गया। एक पेंदनी-सा नासमझ कल का छोकरा उन्हें डांट गया। तिवारी को यह भी लगा कि वह पागल खिलाडियों के बीच की बेदम गेंद है जिसे चाहे कोई उछाल दे, चाहे कोई लपक कर 'किक' मार दे। उसकी वकालत तक की पढ़ाई और अधेड़ उम्र तक की आत्म संतोष देने वाली सामाजिक सेवा पर धूल पड़ गई। लेकिन उसी वक्त उसने अपने को उसी रेले और शोर में डाल दिया।

चुनाव का दिन आ गया। सुबह से शुरू होने वाली अलग-अलग वार्डों की दौड़-धूप शाम तक चलती रही। तिवारी एक बहुत बड़े शो के हो जाने के बाद उस थके हुए भागीदार अभिनेता की तरह बैठा था जो यह सोच रहा हो कि क्या? कैसे हुआ? अब क्या होगा? उसकी हालत लकड़ी के उस टुकड़े की सी थी जो लगातार कई दिन तक किनारे के कटाव में लहरों के थपेड़े खाता रहा हो, फिर अचानक उन्हीं लहरों द्वारा किनारे पर फेंक दिया गया हो– अकेला, उपेक्षित।

और फिर चार दिन बाद चुनाव का नतीजा आ गया। कनौडिया जीत गया। उसकी जीत बीस हजार से ज्यादा की थी। श्रीधर की जमानत जब्त हो गई थी। तिवारी को आशा से भी कम मत मिले थे। मेज को जैसे किसी ने ठोकर मार कर पलट दिया था।

तिवारी को लगता है जो कुर्सी उसको बैठाने के लिये रखी गई थी, उसे ठीक उस क्षण पीछे खिसका लिया गया जब वह बैठने के लिये झुका। वह फर्श पर टिक कर रह गया।

कनौडिया के जीतने की पार्टी धूम-धाम से हो रही थी जैसे उसके बेटे की शादी हो रही हो।

श्रीधर रेलवे कैंटीन में अपने साथियों के साथ कई दिन से चाय पी रहा था। उसके मुह से यही निकला– अभी क्रान्ति बहुत दूर है।

तिवारी जब भी अपने को आईने में देखता तो उसे लगता उसके चेहरे पर बहुत सी लकीरें खिंच आई हैं, और एक तनाव उसकी त्वचा को तानता जा रहा है।

वह सोचता है-- ऐसा उसने क्यों किया ? क्यों वह पागल हो गया ? और जब वह ऐसा सोचता है तो उसे लगता है एक पालवाली बड़ी नाव में वह सुरक्षित सफर कर रहा था, यकायक लहरों का रेला उठा, नाव के पेंदे में कोई छेद हुआ, पानी दोनों तरफ से भरने लगा। पाल आंधी से फट गई। मस्तूल का ऊपरी हिस्सा बचा है, बाकी सब डूब गया, और वह भी।

शहर जो एक पागलखाना बन गया था, धीरे-धीरे अपने सन्निपात को खोकर वास्तविकता लेता जा रहा था। सिर्फ दीवारों पर चिपके पोस्टर नहीं हटे थे, वह शायद साल भर तो वैसे ही फटे, अध-फटे चिपके रहेंगे ही।

# पुरस्कार

सावित्री परमार

वे क्लास लेकर निकले। लगातार दो घण्टे से पढ़ा रहे थे। फिर भी न चेहरे पर आलस्य था न आँखों मे थकान। नपे–तुले कदम, सीधा तना हुआ शरीर और संपूर्ण व्यक्तित्व मे आत्म विश्वास की एक सहज झलक।

"हैड मास्टर साहब! रजिस्ट्री है।" उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। नीम के नीचे पानी की टंकी के पास डाकिया खड़ा था। दफ्तर का पर्दा हटाकर उसे भीतर आने का संकेत करके वे अपनी कुर्सी पर बैठ गये। कई सरकारी गैर–सरकारी चिट्ठियों के साथ उसने उन्हें

सरकारी मुहर सना खासी दिखाई दिया। हस्ताक्षर करके बड़े कौतूहल के भाव उन्होंने उसे खोला और पढ़ा। यह क्या? एक बार, दो बार तीन बार, लेकिन मन में विश्वास जम नहीं पा रहा था। चश्मे को उतार कर रूमाल से खूब रगड़ कर साफ किया। एक-एक अक्षर साफ दिखाई देने लगा। लिखा था, "..................प्रध्यापक दिवस पर आपको राज्य स्तर पर पुरस्कृत किया जायेगा .................." यह कैसा चमत्कार है? कौनसी ईश्वरीय अनुकम्पा है? हाथों की उँगलियाँ थरथरा रही थीं। मन की खुशी ओठों की सीमा तोड़े डाल रही थी। दिल उछल-कर जैसे पूरा का पूरा आँखों की पलकों पर आ बैठा था। संतोष का एक परम तृप्त भाव उनका चहरा भिगो रहा था। आखिर उनकी शिक्षा की सेवा और अनवरत् बहता हुआ श्रम काम आ ही गया न!

जाने कैसे, कब पूरे स्कूल में आग की तरह खबर फैल गई कि प्रधानाध्यापक जी को सरकार द्वारा सम्मानित पुरस्कार मिलेगा। सभी अध्यापक एक-एक करके उन्हें बधाई देने लगे। सभी के मुँह से उनकी उदारता, निष्पक्षता, लगन और श्रम की प्रशंसा हो रही थी। स्कूल की छुट्टी होने से एक घण्टा पहले सारे छात्रों को बाहर खेल के मैदान में इकट्ठा किया गया। सभी छात्र खुश हो रहे थे। यह प्रश्न अलग था कि उन्हें इस नई सूचना से प्रसन्नता थी अथवा पढ़ाई से घण्टा भर पहले मुक्ति मिलने की खुशी थी! सबके बैठ जाने पर अध्यापकों द्वारा सभा की गई। हैडमास्टर जी के कार्यों और उनके स्वभाव के बारे में दो-दो शब्द कहे गये। अंत में उनसे भी कुछ कहने का अनुरोध किया गया। वे खड़े हुए। अजीब सा संकोच उन्हें घेर रहा था। हृदय में उदारता का तूफान सा उठ रहा था। प्रत्येक के प्रति स्नेह उछाल ले रहा था। क्या बोले? सोच कर ही उनकी आँखें और गला भरा आ रहा था। आकस्मिक खुशी और आश्चर्य से उनकी वाणी लड़खड़ा-सी रही थी। बस इतना ही मुश्किल से कह पाये ..........आज जो सम्मान मुझे मिलने जा रहा है उसकी मुझे कल्पना तक न थी। यह आप सभी लोगों के सहयोग और छात्रों के श्रम का फल है। वरना मैं अकेला चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता था। बरगद का विस्तार उसकी शाखा-प्रशाखाओं

से होता है। आप लोगों की नियमितता, छात्रों के कार्य और उनकी अनुशासन प्रियता की ही यह कसौटी है जिस पर मैं खरा उतरता हूँ। अध्यापक के जीवन की बस यही तो सबसे बड़ी उपलब्धि है कि उसका सही मूल्यांकन दूसरों के द्वारा निःस्वार्थ भाव से हो..................आदि।" उनके भीगे-भीगे स्वर को सुनकर सभी प्रसन्न हो उठे। सभी को लगा मानो हैडमास्टर जी को नहीं, वरन् उन सभी को यही सम्मान मिल रहा हो।

छोटा-सा कस्बा। उत्तरी कोने पर बना हुआ स्कूल। प्रत्येक जाति के छात्र शिक्षा पाते थे। हैडमास्टर साहब को पूरे पच्चीस साल हो गये थे इसे संभालते हुए। वे जानते थे कि कितना कुछ करना-सहना पड़ा था। केवल दस-पन्द्रह छात्र ग्रा पाते थे। कहीं पैदल, कहीं गाड़ी से, कभी साइकिल पर वे सर्दी में, धूप में आसपास के गाँवों में घूमते। माता-पिता को समझाते। शिक्षा के गुण बताते और छात्रों को स्कूल में लाकर पिता का प्यार देते। खुद ही उनकी फीस जुटाते। किसी-किसी के लिये कपड़ों, किताबों का भी प्रबन्ध करते। इतनी संघर्षमय स्थिति को लेकर वे अकेले ही भाग दौड़ करते थे। धीरे-धीरे बालकों की संख्या बढ़ी, कक्षाएँ लगी, अध्यापक भी रखे गये और ज्योंही नींव पर दीवार उठी कि बड़े अफसरों के आगे हाथ जोड़कर मिडिल स्कूल करा लिया। एकदम सरकारी। कस्बे के सभी पंच, सरपंच, व्यापारी वर्ग से उनका रसूख था। उनकी कर्मठता और ईमानदारी पर चंदा मिला। सरकार से अनुदान मिला और छात्रों के साथ जुटकर कई काम कर डाले। पहले दीवारों पर छप्पर डाले, खपरैल और देखते-देखते पक्की छतें पड़ गई। हवादार कमरे हो गये। वक्त गुजरा। मिडिल स्कूल हायर सैकण्डरी स्कूल बन गया। बचपन से ही महनत का पाठ सीखा था। स्काउट रहे थे। अब सब काम आया। चारों तरफ फूलों की क्यारियाँ। पेड़-पौधे लहरा उठे। अब तो जैसे यह कस्बा, यह स्कूल, यहाँ के खेत, जंगल, गलियाँ और निवासी ही उनके प्राणी थे।

कस्बे के मिश्वाराम हलवाई से उन्होंने एक किलो छोटे दानों वाले मोतीचूर के लड्डू खरीदे। पाँच तो उसी समय बड़े भक्तिभाव से चढ़ीवाले हनुमान बाबा को चढ़ाकर माथा टेका। शेष बचे घर ले गये।

बच्चों के भाग्य भी तो कुछ होते ही है । बच्चों ने एक-एक लड्डू माग
पूरी गली-मुहल्ले में पिता के सम्मान की खबर बड़ी उदारता से फैलाई

रात भर बड़े मीठे सपने आये । सुबह और दिनों की तुलना
जल्दी ही आँखें खुल गई । लोटा-डोर लेकर वह शिव मंदिर की कुइया प
आये । स्नान करके शिवजी पर जल चढ़ाया । लौटने पर देखा कि पत्नी ने
अपनी शादी पर मिला मुरादाबादी गिलास बहुत दिनों के बाद निकाला
था । गर्म दूध पर तीन अंगुल मोटी चिकनी मलाई तैर रही थी
एक कटोरे में थोड़े से शकरपारे रखे थे । जाने कौन से सलोने दिन मधुर
याद के साथ मन के कोने में गुदगुदा उठे जब धानी आंचल से दो हाथ
हरी-लाल चूड़ियों की झंकार के साथ ऐसे ही कलेवा खिलाया करते थे ।

हैडमास्टर साहब की मूंछों की जड़ें तक मुस्करा उठी । अरसे
बाद पत्नी से थोड़ी हंसी-ठिठोली भी की और उसे झेंपती-लजाती छोड़
शिमले वाला रखा बेंत खूंटी से उतार कर हाथ में लेकर बाहर बाजार
की ओर चल पड़े । कच्चे-पक्के घरों, दुकानों के बीच से पाँव बढ़ते गये

कहीं धुआँ, कहीं गोबर की सुगन्ध वातावरण अजीब तरह छाई थी।
छप्परों, द्वारों की साँसों मे से स्वर छन रहे थे । हरेक चीज रोज जैसी ही
सहज थी, फिर भी आज जैसे सब नया-नया था । "मन चंगा, कठौती में
गंगा" । कहीं-कहीं खपरैलों, दीवारों से सटी तोरई, लौकी की बेलें फूलों
से टिटकारी मार रही थी । रंगरेज़ों की भट्ठी के पास से दो-तीन
पिल्ले उनके पैरों के बीच से निकल गये । वे बच्चों की तरह खिलखिला
कर हँस पड़े ।

अचानक उन्हें बोध हुआ कि अगर इस कस्बे ने उनकी बाह हमेशा
पकड़ी है तो उन्होंने भी आज इसकी इज्जत बढ़ाई है । कस्बा उन्हें अपने
मन की तरह विशाल लगा । चारों ओर आम-जामुन के पेड़ों की कतारें ।
अरे ! ख्यालों में डूबते-तैरते वे जाने कब रामजू बगीचे की सड़क पर
निकल आये थे । और आगे बढ़े तो नहरी-नाला चल पड़ा । दोनो ओर
लहराते खेत । अगल-बगल तीन कुएं । सुनहरी धरती की देह पर बिछी
हरी घास की किनारी । वो सामने बल्देव ठाकुर की ऊँची हवेली । बहुत
आगे निकल आये थे मन की तरंग मे । गोविन्द बिहारी के मंदिर के पास

उनके पैर रुक गये। घण्टे-शंख की आवाज कानों में पड़ी। सिर पर रूमाल डाल कर वे भीतर आगन में आये। सफील के पास जूते उतार कर टोटी खोल हाथ धोये और भगवान के चरणो मे भाव-पुष्प अर्पित किये-- "मालिक ! नेक काम करने का यों ही हौसला देते रहना। बुरे कामो से और गर्व से बचाना......"

आधे घण्टे बाद वे लौट पड़े। घर जाने के स्थान पर जाने कैसे वे स्कूल के दरवाजे पर आ खड़े हुए। बड़ी भरपूर नजर उस पर डाली। ओह ! उनके परिश्रम की साकार प्रतिमा वह इमारत खड़ी थी। कितना कीमती उम्र का समय इसके बनाने मे उन्होंने लगाया था। न खाने की परवाह की और न आराम की। जीवन भर पत्नी की यही शिकायत रही।

उनके हाथो से लगे पपीते, नीबू, अनार, वगैरे, अमरूद के पेड मुस्करा उठे। नीम और आम उन्हे जैसे पास बुलाने लगे। महुआ, मोगरा और तुलसी के स्वर जैसे गुनगुना रहे थे। दफ्तर के पीछे सब्जियाँ फैली पड़ी थी। बीच मे गुदगुदी हरी घास का फर्श बिछा हुआ था। खुरपी-गैंती लिये जुटे ही रहते थे। बच्चो की तरह इन हरी डालियों की रक्षा उन्होंने रातो की थी। एक बार बीरमपुर वाले हैडमास्टर जी आये थे तो बोले थे, "यार क्यों जान खपाते रहते हो ! चंदा जेब मे डालो और मौज करो।" कितना बुरा लगा था सुनकर ! ऐसी बेईमान माटी के बने ही नही थे। वह बडा सा पीतल का घण्टा भी वही लाये थे शहर के सालाना मेले से। वरना लोहे का एक टूटा टुकडा पेड़ से लटका रहता था पहले। कितनी मरियल आवाज देता था कि क्लासों तक आवाज ही नही जाती थी। बड़े स्नेह से उन्होंने छोटे से कमरे के ताले को टटोला, जो पुस्तकालय का कमरा था। अच्छी-अच्छी पुस्तको, पत्रिकाओ का सग्रहालय। अखबार भी मंगाते थे। दुनियाभर की खबरें जानना भी तो बहुत जरूरी था।

पीली बालू रेत बिछवा कर छात्रो के लिये खेल का मैदान तैयार कराया था। स्कूल के बच्चे हर साल आस-पास के स्कूलो को तरह तरह के खेलों मे हरा कर विजयी होकर आते थे। वाद-विवाद और ड्रामों मे भी जीतते थे। विजयी छात्रो को वे अपने हाथों मे इनाम देते, मिठाई खिलाते।

मेलों-त्यौहारों में भी यहां के स्काउट-छात्र कार्य करते थे। जो भी शिक्षा-विभाग का कागज कस्बे की ओर का निकलता तो पहले उन के स्कूल में आता और चलते समय स्कूल की, छात्रों की और उन की प्रशंसा करके जाता। उनकी सर्विस-बुक में भी कभी कोई धब्बा न आया। बाहर भी उनके स्कूल को आदर्श स्कूल की संज्ञा दी जाती थी।

तीसरे दिन वह पुरस्कार लेने शहर चल दिये। बड़े आदर-सम्मान से स्कूल ने उन्हें भेजा। ढेरों फूल मालाएँ उनके आस-पास बिखर गई। एक-डेढ़ मील कच्चा रास्ता पार करके नजदीक के छोटे स्टेशन से आगे के लिये बैठ गये। निश्चित स्थान के बड़े प्लेटफार्म पर ट्रेन रुकी सामान ही क्या था! एक बैग, एक टीन का छोटा बक्स। पहले वे साथ वेटिंगरूम में गये। मुँह-हाथ धोया। खास मौकों पर पहनने के लिये बन्द गले का कोट, चूड़ीदार पायजामा और रेशमी चादर हमेशा धुली हुई तैयार रहती थी। हालांकि कोट के गले में से अब सूत के रेशे निकल आये थे। बाँहें भी फटती जा रही थी। रेशमी चादर में कई रफू हो रही थी। फिर भी इन कपड़ों को खजाने की तरह संभाल कर रखते थे। इसी पोशाक को बड़े जतन से ठीक-ठाक करके पहना। कई महीनों से मौका नहीं आया था इस्तेमाल करने का, इसलिये कपड़ों की 'क्रीज' बिगड़ रही थी। हाथ से सलवटें मिटाने में उन्हें तनिक परिश्रम करना पड़ा। एक जोड़ी कमीज-पायजामा और रखकर ले आये थे दिन के फालतू समय के लिये और रात को सोते समय पहनने के लिये।

हर तरह से लैस होकर उन्होंने अपने फूलदार हरे रंग का बक्स और थैला एक रिक्शे में रखा और सही स्थान-पता बता कर शहर के भीतर चल दिये।

दो-तीन बार फिर भी स्थान पूछना ही पड़ा। आखिर वे उस स्कूल के दरवाजे पर आ ही गये जहां ठहरने की व्यवस्था की सूचना पत्र में उन्हें मिली थी। बाहर ही चौकीदार के द्वारा पता लगा कि "यहां वाली व्यवस्था रद्द करदी गई है तथा अब ठहरने का प्रबन्ध शहर से बाहर वाले बड़े स्कूल में किया गया है"— उसी चौकीदार से नया पता लेकर उसी रिक्शे में फिर चल पड़े। यह स्कूल शहर से करीब पांच मील की दूरी

पर था। सदैव शान्त रहने वाले उनके मन मे भी झुँझलाहट आ गई। अजीब तमाशा है ! न कोई सही ठिकाना, न किसी परिवर्तन की अग्रिम सूचना। न खाने-पीने का कोई सलीका, न स्टेशन पर कोई चपरासी ही छोड़ा गया है कि वह नये व्यक्तियों को कम से कम सही जगह पहुचाने मे सहायक हो सके। सारा शहर अकेले ही ढूंढना पड रहा है। गरीब अध्यापक का सम्मान शायद इसी प्रकार होता है ? काश ! अगर यह सम्मान किसी और पद को मिलता तो इस समय तस्वीर का पहलू ही दूसरा होता। मन की उमग पर अनजाने ही कहीं थोडी सी धुंध छा गई।

रात आई। सम्मान-समारोह की जिज्ञासा मे दिन की रुखाई मिट गई। सुबह वाले कपडे फिर पहने। पांच-छ तहों में लपेट कर कंधे पर दुपट्टा डाला। काली गोल टोपी लगाई। रूमाल से रगड कर बेंत साफ किया। बाहर निकल कर जूतो पर पालिश कराई। सालो बाद उन्होंने अपने को अच्छी तरह संवारा था।

"शिक्षक-दिवस"—"पुरस्कार-समारोह"—बड़े ही कलात्मक ढग मे बिजली के छोटे-छोटे लट्टुओ से जगमगाते शब्द चमक रहे थे। द्वार सजे हुए थे। लाल बजरी के मार्ग, दोनो ओर पॉम की पक्तियां। जगमगाता हॉल। चारों तरफ लाउडस्पीकर। सज्जित मच। मन मे गुदगुदी-सी हो रही थी। गर्दन कुछ ज्यादा तन-सी रही थी। रह-रहकर मन मे पछतावा हो रहा था कि अपने साथ हैडमास्टरनी को क्यो नही लाये। वह भी देख लेती कि उन्हे उनकी मेहनत का फल कितनी खूबसूरती के साथ मिल रहा है। जीवन भर वह उन्हे यही ताने देती रही कि न कभी समय पर बच्चे सभाले, न घर आये, न वक्त पर खाया, न आराम किया। कभी उसे लेकर वह मेलो, खेल-तमाशो मे नहीं गये। बस रात-दिन एक ही जोगियापन...स्कूल, स्कूल, छात्र...काम...काम...इससे आगे कुछ नही। प्रबन्धक इधर-उधर दौड रहे थे। हैरानी उन्हे अचानक तब हुई जब कि उन्हीं की तरह जो भी अन्य लोग सम्मान पाने आये थे वे सभी चुपचाप मूर्ति की तरह निश्चल बैठे थे अपने मे और कुर्सियों मे धंसे हुए से। वे सब आगये थे। कुर्सियाँ, जो उनके लिये इधर-उधर की दो पक्तियों में बँट रही थी, भर गई थी.. बस...अब जैसे उनकी ओर ध्यान देने की जरूरत

नहीं रह गई थी। सारी भाग दौड़ उन बड़े–बड़े नामों की हो रही थी जो आने वाले थे। सभी एक–एक करके आ रहे थे। भीड़ के रेले उनके साथ हँस रहे थे, मुड़ रहे थे। धड़ाधड़ उनकी फोटो उतारी जा रही थी। बार-बार पानी की ट्रे उठ रही थी। सारे हॉल की आँखें उन्हीं की ओर लगी हुई थी। उन्हें लगा कि सारा समारोह, यहाँ की सजावट, ये शोरगुल, फूलों की मालाएँ, चेहरों की उत्सुकताएँ सब इन्हीं लोगों के लिये है। सम्मान पाने वाले अध्यापक गण तो बस माध्यम भर हैं। ............

उन्होंने अपना ध्यान उधर से हटाकर अपने आसपास किया। वे हमेशा 'सादा जीवन–उच्च विचार' वाले व्यक्ति रहे थे, लेकिन आज यहाँ आकर पता चला कि उनके कपड़े बड़े मामूली और रद्दी थे। सस्ते, मैले और बेढंगे। तेज दूधिया रोशनी में उन्हें अपने हाथों का रंग भी कुछ अधिक काला लगा। इधर-उधर गहरे रंगों के कोटों की बाँहों में से झाँकते गोल, चिकने, सुन्दर सुडौल हाथों के सामने उन्हें उठी हुई नसों वाले, टेढ़ी-मेढ़ी उँगलियों वाले हाथ बड़े बुरे से लगे। मेहनत, धूप, गर्मी ने उनकी त्वचा की कोमलता जाने कब छीन ली! उन्होंने ध्यान ही कब दिया था इस तरफ!

तभी एक व्यक्ति ने एक–एक सचित्र परिचय–पत्रिका सभी को दी। इसमें अध्यापकों का कार्य विवरण सहित परिचय दिया गया था साथ ही सब चित्र भी छपे हुए थे।

'सम्मान पुरस्कार' का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। एक साहब बड़ी जल्दी–जल्दी सम्बन्धित अध्यापक का परिचय उस पत्रिका में से पढ़ कर सुनाते थे। वह अध्यापक अपनी कुर्सी से उठकर गवर्नर साहब के सामने के पास आता। नमस्कार करता। परिचय चलता रहता, फिर 'चीफ गेस्ट' उसे दो सौ पचास रुपये चाँदी की डिबिया में रखकर देते। वे अपलक यह आयोजन देख रहे थे। प्रत्येक नया नाम सुनने पर उनकी धड़कनें बढ़ जातीं। उनका नाम भी आखिर बोला गया। वह खड़े हुए। आगे बढ़ते हुए वे काँप रहे थे जैसे वे इनाम लेने नहीं बल्कि कोई दण्ड भुगतने जा रहे हों। उन्हें लगा कि इस समय आँखों की चमक और चेहरे का गौरव जैसा होना चाहिये, वह नहीं है, इसके स्थान पर आने क्यों एक

खिसियानी सी लिजलिजी मुस्कान पिघले मोम सी ओठों पर फैल गई थी। ऐसा क्यों ? बात समझ में नहीं आई।

माइक पर अनेक कार्यों की, मेहनत-लगन की और स्कूल के कुशल संचालन की घोषणा हो रही थी। मन गद्-गद् हो रहा था। आँखें सजल थीं। विश्वास नहीं हो पा रहा था कि इतनी सारी मेहनत, इतना ढेरों काम वह कैसे कर गये ?

आगे बढ़कर काँपते हाथों से उन्होंने इनाम ले लिया। इस आयोजन की समाप्ति के पश्चात् गवर्नर साहब का भाषण हुआ। बड़े इत्मीनान से वे आगे को थोड़ा झुक कर बैठ गये कि देखें ये क्या कहते हैं ?·········सभी अध्यापक बन्धुओं को बधाई देता हूँ। आपमें से चाहे अध्यापक हों अथवा प्रधानाध्यापक, लेकिन मैं तो इतना जानता हूं कि शिक्षक केवल शिक्षक होता है। यही सैनिक, डॉक्टर, इन्जीनियर और कुशल व्यापारी पैदा करता है। वह अपने हाथों से खेत जोत कर उत्तम बीज बोता है। श्रेष्ठतम फसल तैयार करके स्वस्थ अन्न बाजार के चारों कोनों में वितरित कर देता है। यद्यपि इस वर्ग की कुछ समस्याएं सदा जीवित रहती हैं, कम वेतन मिलता है और समाज में सम्मान भी कम होता है फिर भी यह वर्ग पूर्ण आत्मतोष के साथ अपने कर्त्तव्यों में लीन रहता है। आज के भले-बुरे समाज को बनाना-मिटाना शिक्षक का ही कार्य है। अभी आप लोगों को और आगे बढ़ना है और मेहनत करनी है। ' ··· ' एक-दो अध्यापकों ने भी खड़े होकर बोला और भविष्य में अपनी कार्यक्षमताओं के विस्तार का विश्वास दिलाया।

"शिक्षक-सम्मान-समारोह" समाप्त हुआ। बड़े-बड़े नाम बाहर आने लगे। सारी भीड़ चुम्बक की तरह उसी ओर खिंचने लगी। सभी का प्रयास था कि ओहदों को छूने, उनके पास खड़े होने का सौभाग्य उन्हें मिले। ओहदों के भीतर से छनती मुस्कान को पाने के लिए सभी व्याकुल थे। शब्दों पर चाशनी का आलेप चढ़ाया जा रहा था। जिन्हें सम्मान मिला है, जिनके कारण यह आयोजन हुआ है, जिनके नाम पर कुछ करने का मौका मिला है और निष्क्रिय ढाँचों में कुछ हिलने-डुलने के कारण सजीवता आई है ······वे सब किधर हैं ? उन्हें कुछ शिकायत तो नहीं है ! उनके

जाने का क्या प्रबन्ध है ! यह जानने की किसी को फु
बाहर की गैलरी में खड़े सोच ही रहे थे कि जायें या प्र
जायें तो ठीक है, क्योंकि क्या पता भीड़ का कोई रेला उ
पूछे कि उन्होंने इस शतुरमुर्गी युग में कैसे इतना काम, इन
दारी, सादगी दिखाई है ! सभी को बतायें। आपके उदाह
मिल सकें।

क्या पता कोई फोटोग्राफर इधर आकर उन्ही क
जिद्द करे कि आदर्श स्कूल के आप आदर्श कर्मठ हैडमास
फोटो बहुत बड़े मायने रखता है ……नहीं, नहीं ……आ
चाहिये। जल्दी भी क्या थी भला !

बरामदा, हॉल, बाहरी गैलरी सभी खाली होती
कारों, स्कूटरों, साइकिलों की ढेरियां छंट रही थी। खड़े-ख
दुखने लगे। आँखें पथरा गईं। न इधर सामने से न पीछे से
किसी ने आवाज देकर उन्हें बुलाया। कुछ लोग एक तरफ
रहे थे। बिस्कुट कुतर रहे थे। उनको भी भूख-सी लगी।
जाने को मन नहीं हुआ। एक-दो ही रिक्शे बचे थे। बड़े
से वे अपने ठहरने के स्थान पर लौट आये।

कस्बे की ओर लौटते समय रास्ते में ही वजीरसिंह
उन्हें मिले। कह रहे थे कि "अबकी बार हवा का रुख बहुत
शहरी जहर इधर भी आ गया है। सभी कूलों के छात्र कम
हड़ताल कर रहे हैं। क्यों ?……क्यों क्या ! करने वाले खुद
रहे कि वे क्यों कर रहे हैं। चूंकि फलां स्कूल ने की तो हम
और नहीं तो क्या ? आपके स्कूल के छात्र भी खूब हो-हल्ल
हैं"……वह तो दूसरी बस में बैठकर चले गये वह कर लेकिन
साहब सुन कर सन्न रह गये। क्या हो गया इनको ! इतने सुन
छात्रों में यह शहरी नक्ल क्यों समा गई ! अब तो परीक्षा के
कितने हैं ! यों दो महीने पर लगा कर बीतते हैं। ये लोग प
लिखाई का नुकसान भी नहीं देखते।

मन बड़ा उदास हो गया। एक तो पहले ही शहर से वे उदास, क्षुब्ध लौटे थे अब और भी उनका मन टूट-सा गया। कहाँ तो वे सोचते आ रहे थे कि सभी छात्र उन्हें हाथों पर उठा लेंगे। खुश होंगे। उन्हें पार्टी देंगे। खूब बातें पूछेंगे। स्कूल को सजा कर अपनी प्रसन्नता जाहिर करेंगे। वे भी उन्हें मिठाई बाँटेंगे। उन्हें एक दिन की छुट्टी देंगे।······ जाने क्या-क्या कल्पनाएँ करते आ रहे थे। सब की सब भरभराकर गिर पड़ीं। अब भी विश्वास था कि उनके बच्चे गलत कदम नहीं उठा सकते। थोड़ा-बहुत बाल सुलभ बचकानापन भले ही दिखा दिया हो लेकिन अशोभनीय हरकतें उनके द्वारा हो ही नहीं सकती। और पीछे से तो उन लोगों का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। उन्हें अपनी और उनकी दोनों की ही मर्यादाओं का ध्यान रखना है ......................

कस्बा आगया। पहले दो स्कूल आते थे। उनके दरवाजों पर छात्रों की भीड़ के छत्ते जमे चीख रहे थे। वे किसना नाई की दुकान का पिछवाड़ा पकड़कर बायें निकल गये। सामने उनका स्कूल खड़ा था। हवा यहाँ भी बहुत गर्म थी। लड़के बुरी तरह उछल रहे थे। हवा में मुक्के, हाथ लहरा रहे थे। मुर्दाबाद और अपशब्दों के छींटे उड़ रहे थे। वे पिछले दरवाजे पर हट कर खड़े हो गये। वहाँ से भी हटकर नीम के पेड़ की ओट लेली। उनके ओठ काँप रहे थे। लड़के उनके हाथों से लगाये गये पौधों को नोंच रहे थे। बाहर जो उन्होंने 'ठण्डी-कुटिया' बना रखी थी हरी बेलों से आच्छादित .....उसे छात्रों ने उन्हीं की आँखों के सामने तहस नहस कर डाला था। वो ...........शायद संस्कृत के वृद्ध मास्टरजी छात्रों को कुछ समझाने का प्रयत्न कर रहे थे, लेकिन लड़के उन्हें भला-बुरा कह रहे थे, कुछ नहीं सुन रहे थे। ..ओह ! लायब्रेरी की खिड़की तोड़ डाली। पीतल का घण्टा खोलकर दो विद्यार्थी उसे पोखर में फेंक आये। ओफ्फ ! बड़ी मेहनत से पाला-पोसा उनका गुलमुहर का लाल-लाल फूलों से धकधकाता पेड़...छात्र उसकी डालियाँ तोड़ रहे थे, नोंच रहे थे। उन्हें लगा कि उनकी आँखों को, आत्मा को और उनके विश्वास को ही जैसे तोड़ रहे हैं। वे आगे बढ़े। ...ठहरो..... नहीं, नहीं, अब और नुकसान नहीं सहा जायगा। अपनी आस्थाओं की हत्या अब और नहीं होने दूँगा......सुनो......देखो मैं आ गया हूँ ...... तुम्हारा

हैडमास्टर......इधर सुनो ये तो तुम्हारी ही चीजें हैं, तुम्ह
स्कूल है ..ठहरो... । तभी एक भारी गाली के साथ नुकील
माथे पर आकर लगा। खून की गर्म-पतली धारा उन
भिगोती हुई सीने पर टपकने लगी। दिल में न भरने वाला
आँखें बन्द हो गई। भूखे-प्यासे, हारे-थके तन में भु
गई। द्रोणाचार्य की हत्या हो गई थी। गुरू का सम्मान
संकेत दे रहा था। धाराएँ बह रही थीं। आँसू थे या लहू...
जानें। ओह ! इन्होंने ऐसा किया ! इनको पुस्तकें दीं,
दिलाई। नल लगवाये। मैदान हाथों से साफ किये। न
न कोई शौक पूरा किया। मिट्टी हो गये। इन्ही पर गर
आज तक ? पुत्र की भांति हर छात्र को देखा। दो-दो, तीं
इनको अच्छे-अच्छे उदाहरण देकर व्यावहारिक ज्ञान सिखा
यह सब झूठ रहा ? क्या उनका ऐसा व्यवहार आज
निकला ? वह कैसी आत्म प्रवंचना में झूमते रहे आज तक ?
पीछे लौट चले। होने दो, जो हो रहा है होगा। लगा हाथ में लग
अयथार्थ है। इतने दिनों की सच्चाई, लगन और कुशलता क
सम्मान -उन्हें अब मिला था ! सम्मान के प्रतीक अब न
एक दर्द... एक हिलोर सी फिर उठी। वे फिर स्कूल की ओर
छात्रों के चहरों पर हिंसक प्रवृत्ति, आँखों में बेशर्म लहरें और
नुकीले शब्दों की इबारत देख कर लौट गये।
शायद कल अच्छी भोर आये !
शायद ...... शायद...... ?

# पोर्ट्रेट्स

प्रेम सक्सेना

हमेशा की तरह वह आज भी आई और कुर्सी बिना सरकाये बैठ गई, शान्त, निःशब्द। यह उसका वर्षों पुराना रूटीन था। लगभग दो घंटे बैठी रहती। प्रायः न हिलती, न कुछ बोलती। उसका पोज़ भी लगभग एक-सा ही रहता—कमर से ऊपर तक तनी हुई, गर्दन एक तरफ हल्की-सी झुकी हुई और नज़रें सामने खन्ना की टेबल पर रखे हुये शीशे पर टिकी हुई जहां वह न कुछ देखती थी, न कुछ देख पाने की आशा रखती थी—सूनी आंखों की खाली नज़र और बस।

जैसे आई थी उठकर चल दी। खन्ना ने न कुछ

पूछा, न उसने कुछ कहा। उसके आते–जाते वक्त खन्ना में कोई हरकत तक नहीं हुई, उसके काम में कोई व्यतिक्रम तक नहीं आया। टेबल की दराज मे सैंट बीसियों खानों में से कार्ड निकाल–निकाल कर उन्हें पढ़ता रहा, उन पर निशान लगाता रहा, और वह चली गयी। इसी तरह हमेशा चली जाती..................

............ और खन्ना तब काम करना बंद कर देता, अ-व्यस्त हो जाता। एक तरह से काम समाप्त ही कर देता हालांकि उस समय तीन ही बजा होता। दफ्तर पाँच बजे बन्द होता। पर उसके बाद वह कुछ नहीं कर पाता, शायद कुछ करना नही चाहता। कभी बख्शी आ जाता तो उससे गप्पें मारना पसंद करता पर वह डरता कि बख्शी 'उसकी' बात न छेड़ दे। तब उसे बड़ा डर लगता। वह व्यस्त होने की कोशिश करता तो बख्शी जैसे उसकी नब्ज पकड़ लेता। ठीक 'उसकी' तरह बैठने की बख्शी ज्योंही कोशिश करता खन्ना हँसकर उसके प्रभाव को टालने की चेष्टा करता। बात कभी तो यहीं तक समाप्त हो जाती और कभी बढ़ जाती तो खन्ना छटपटाने लगता। वह चाहता समय पूरा हो तो उठे, पर घड़ी की सुई आगे सरकने का नाम ही नही लेती थी। और तब बख्शी बदमाशी पर उतर आता, पूछ बैठता, 'आज आई नही क्या ?'

खन्ना को लगता कि जैसे कमरा एजेण्टों की बदबू से मह उठा है। उसका चेहरा तमतमा उठता। उसका मन करता कि वह बख्शी का गला घोट दे। पर वह ऐसा कुछ नहीं कर पाता और पैंसिल की नोक तोड़ने लगता। बहुत हुआ तो जोर–जोर से लगातार घण्टी बजाता, विष्णु के आने पर पानी मंगाता, चाय मगाता, पान मँगाता पर फिर भी कमरे में फैली बदबू से उसे छुटकारा नहीं मिल पाता। तब अचानक जैसे मरा चूहा दिखाई देने पर बदबू का कारण समझ मे आये, वह बख्शी को कूड़ेदान में फैंकने की योजना बनाने लगता, पर सब व्यर्थ जाता, तब तक बख्शी कोई नई बात छेड़ चुका होता, खन्ना का तनाव कम होने लगता और घड़ी की सुई के आगे सरकने के साथ-साथ बदबू कम होने लगती जो दफ्तर का समय पूरा होने तक समाप्त हो जाती।

बख्शी से जिसकी चर्चा तक करना नहीं... उसी को...

रास्ता गुजार देना। वह कार में होता जरूर था, पर वह अपने आप चलती थी। उस समय खन्ना कहीं और ही होता था। उसने जितना सहज समझा था बात वैसी नहीं थी। लगता था कि वह स्वयं अपराधी है। उसे बख्शी की दो टूक बात अब सच्ची होती दिखाई दी :

बख्शी ने कहा था कि 'मिस' को उलझाना ठीक नहीं।

'उसका' नाम तो अरुणा था पर वह अपने को अरुणा भारती कहलाना पसंद करती थी किन्तु लोग-बाग उसे मिस कहकर ही पहचान लेते थे। वैसे यह बहुत कम लोगों को पता था-शायद किसी को भी नहीं-कि *वह मिस के नाम से ही क्यों जानी जाती है या वह अरुणा भारती से मिस* क्यों हो गई? क्या वह अविवाहित थी? क्या वह विधवा थी? खन्ना को सही पता हो सकता है, या फिर स्वयं अरुणा को ही, लेकिन उसकी खोज बीन वहां और कहीं कोई क्यों करता? खैर ..

तो बख्शी ने कहा था कि मिस को उलझाना ठीक नहीं। खन्ना ने उसे केवल नसीहत समझा। वह स्वयं जानता था कि बख्शी खुद कोई परहेज करने वाला आदमी नहीं है।

पर हकीकत तो यह थी कि बख्शी खुद अरुणा को खन्ना के दफ्तर में लाया था। खन्ना नया-नया पदोन्नत हुआ था— एक बड़ा आला अफसर। बख्शी ने खन्ना का परिचय कराया। उसे अपर्याप्त समझ, खन्ना ने अपने आप जोड़ दिया 'थोड़ी साहित्य-वाहित्य में रुचि है। पर मेरी हॉबी चित्र-कारी है। पहले तो सरकारी काम से फुर्सत ही कम मिलती है। थोड़ा बहुत समय मिलता है तो पोर्ट्रेट बनाने बैठ जाता हूँ।
अरुणा ने उत्साहित होकर कहा था, 'हमें भी सौभाग्य मिलेगा आपकी कला में उतरने का।'
बख्शी अवाक् रह गया था। खन्ना ने यह तुरप क्यों लगाया। पर फिर समझते देर नहीं लगी। बख्शी ने कंधा झटक दिया। कमरे से बाहर निकल आया। और दूसरे दिन से नये ठेके का काम पूरा करने पर जुट गया। जब काम समाप्त हो जाता तो खन्ना के पास आ-धमकता और बेबाक पूछता 'क्या वह आई थी?' या 'आज नहीं आई क्या?'

तब खन्ना का कमरा ऐजेन्टों की बदबू से सड़ने लगता।

मैंने अरुणा इन सबसे बेखबर थी। बख्शी भी निश्चिन्त था। अरुणा और खन्ना सम्बन्धों के किस स्तर पर हैं इसकी उसने कभी परवाह नहीं की। शुरू–शुरू में कुछ तनाव जरूर आया था। अरुणा से उसके कोई गहरे सम्बन्ध नहीं थे। शायद सम्बन्धों की शुरुआत थी। वह और खन्ना हम उम्र और सहपाठी थे। पढ़ाई के बाद बख्शी बेकार और खन्ना सरकारी नौकर हो गया था। पर दोनों ही राजनीति के अलावा बौद्धिक कार्यक्रमों में थोड़ी बहुत रुचि लेते थे। बख्शी बेकार था सो थोड़ा फैलने लगा। आन्दोलन, प्रदर्शन, संस्थाएँ, समितियाँ उसके समय काटने के साधन बन गये। बैठकों, गोष्ठियों में, सभा के प्लेटफार्म से व अखबारों में, फैक्टरियों के मजदूरों और गाँव के किसानों के लिये जुबान लड़ाते-लड़ाते चुनाव लड़ाने लगा। ऐसे माहौल में ही अरुणा से वह मिला था। उसे लगा था कि वर्षों पहले ही अरुणा उसे मिल जानी चाहिये थी। और उसके कुछ ही दिन बाद खन्ना से उसका परिचय कराते समय उससे वह छूट गई तो बख्शी के मुँह का स्वाद कड़वा हो गया। वह नहीं समझता था कि खन्ना इस कदर गिर गया है, छिपने लगा है। उसने अपने मन की बात एक दिन खन्ना को कहदी और छुट्टी पाली खन्ना से, अरुणा से।

और अब खन्ना को बख्शी की बात की गहराई और सच्चाई नजर आने लगी थी। खन्ना सोचे जा रहा था जो हुआ ठीक नहीं था। सरकारी काम काम की तरह करना, अपना मन उससे दूर रखता। क्या पड़ी थी उसे कि अरुणा को इस तरह अंधेरे में रखता? क्या जरूरत थी जो आज तक वह उसे सपनों में पाले रहा, झूठे कार्डों की हेर-फेर करता रहा। इससे क्या उसने अपना या उसका कोई पोर्ट्रेट बना लिया। वह स्वयं कोई चित्र-निर्माता थोड़े ही था। वह तो मात्र बहुरूपिया था, एक लम्बी कतार का पहला सिरा-जहाँ अरुणा उसके पास खड़ी थी आंखों में सपनों के जीने की चमक लिये। वैसे एकान्त में, अकेलेपन में, सपन जीवी क्षणों से दूर के जीवन में भारती ( खन्ना उसे भारती ही कहना पसंद करता था ) की आंखों में चौथाई शताब्दी पहले का वही सूनापन झाकता था जब वह सीमा के उस पार दरिन्दों से छूटकर यहाँ आई थी, बख्शी की पहले आद-मियत की ओर आकृष्ट हुई थी और बाद में वह खन्ना के सफेद छलावे

मे अपने को भूल गई थी। पर इसमें भारती का दोष कहाँ था—खन्ना सोचे जा रहा था— वह तो एक निश्छल विश्वास के सहारे, एक पवित्र आस्था की तरह जी रही थी। दोगलापन तो खुद उसमे था। हर विश्वास, हर आस्था, हर आदमियत को वह फाईल पर एक निर्जीव नोटिंग की तरह समझता था जो आज की बस्ती को जमात के लोगों के लिये ही अजीब होती थी…

तभी सामने लाल बत्ती हो गई। कार रुक गई। पर वह निर्णय करता-सा सोचता रहा—अब वह भारती को सब साफ-साफ कह देगा कि वह मात्र धोखा था। वह चित्र-निर्माता नहीं चित्र लटकाने वाला मात्र था। बनाना उसके बस की बात नहीं। असलियत तो यह है कि वह सिर्फ बिगाड़ सकता है बना हुआ है उसे भी, बनता हुआ है उसे भी…

तभी हरी बत्ती हो गई। कार चलने लगी और उसका ध्यान गया कि वह जहाँ चल रहा है उसके आगे, दायें, बायें लम्बी कतारें हैं, निःशब्द कारें हैं और उन सबके आगे चिल्लाता करता एक जुलूस है जो लाल बत्तियों की सुरक्षा मे दूसरी तरफ से निकल कर आगे आ गया था और इन सबको तमाशों की तरह देखता डाचों का हुजूम है जो सड़क पार करने के लिये कतारो के समाप्त होने की प्रतीक्षा कर रहा है…

# एक घूंट पानी

करणीदान बारहठ

मैना जब अपने गाँव के समीप पहुंची तो उसे सारा गाँव धुंयें मे डूबा हुआ दिखाई दिया। पीपल के पेड़ बहुत ही उदास और मौन नजर आ रहे थे। उसने पूरी कोशिश की थी कि अंधेरा उतरने से पहले ही गाँव जा पहुँचे लेकिन उसका सूरज तो खेत मे ही डूब गया था। काम भी क्यां कम था, दिन भर तो वह मोठ उखाड़ने में लगी रही, फिर उसने लकड़ियां इकट्ठी की। आसौज महीने की धूप भी तो करारी होती है—चमड़ी को जलाने वाली। दोपहर को उसने बच्चे को दूध पिलाया था वह सो गया तब वह फिर काम मे जुटी थी।

दुबली-पतली देह को दिन भर धूप में तपाने पर भी वह केवल दो बीघा के मोठ उखाड़ सकी थी। बीच-बीच मे बच्चा रोया, तब थोड़ी सुस्तायी थी। सुस्तायी भी कहाँ थी, उस बीच गाय को भी चारा डाला था। भागते-भागते ही सूरज ने गोच मार लिया, तब वह बच्चे को गोद मे लेकर चली। सिर पर छबड़े का भार अधिक था, वरना वह कदम जल्दी-जल्दी उठा लेती। गाय भी तो इतनी भली नहीं कि उसे सीधी आने देवे। एक बार वह भी रास्ते के एक खेत मे घुस गई। उसको भी तो निकालना जरूरी था। उस समय वह भागते-भागते हाँफ गई थी।

गाँव के भीतर प्रवेश करते ही उसे नारायण याद आ गया—उसका पति। उसकी याद तो दिन भर जुड़ी हुई थी। यदि वह बीमार नहीं होता तो वह खेत में अकेली थोड़े ही रहती। सुबह वह घर के काम से निवृत होकर खेत के काम के लिए रवाना हुई थी। उसने उसे पूछा भी था, 'आपकी तबियत ठीक नहीं हैं, आज-आज रहने दूं?'

तब नारायण ने कहा, 'तबियत का क्या है, वह तो ऐसे ही रहेगी, मोठ जल जायेंगे, तब कितना नुकसान होगा, जानती है? गाय भी तो भूखी खड़ी रहेगी।'

तब उसने काम जल्दी-जल्दी मे निपटाया था

घर मे घुसते ही उसने देखा कि सारे घर मे अन्धेरघुप्प है। उस समय उसका हृदय एकदम धड़कने लगा था। लकड़ी के गट्ठर को एक तरफ डाल कर उसने कोठे में प्रवेश किया। उसने डरते-डरते आवाज़ दी। उसे कोठे मे कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। ढेर-सा अँधेरा चारों ओर घिरा हुआ था। एक मरियल आवाज ने आहट का जवाब दिया—'आ गई?' तब उसके जी में जी आया। चटके से उसने दियासलाई ढूंढी, जलाई और नारायण के सिरहाने पड़ी चिमनी की लौ सीधी जलने लगी। प्रकाश मे नारायण का चेहरा दिखाई पड़ने लगा—पहले-सा ही कमजोर, लिप-लिपा, बुझा हुआ-सा।

'अब मैं गाय बांध आऊँ' कह कर वह बाहर चली गई।

दो मास के बच्चे को खटिया पर ही डाल गई। वह जोर से चिल्लाने लगा।

नारायण की हिम्मत ही नहीं थी कि वह बच्चे को गोद में लेकर चुप करादे। बच्चा बाहर झाँकता हुआ रोने लगा था। नारायण को खाँसी आने लगी। उस समय मैना भी आ गई थी।

'आपको क्या बना कर दूँ ?' मैना को जैसे कुछ फ़ुरसत मिली थी और उसने पूछ लिया।

'भूख ही नहीं है,' नारायण ने सिर मारते हुए उत्तर दिया। उसने अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी पर हाथ फेर लिया था।

मैना का मन मारा गया। उसने नारायण की कलाई को पकड़ कर देखा, फिर माथे पर हाथ रखा, वह अपनी 'डाक्टरी करने लगी' थी। डील की गर्मी को देख कर कुछ सन्तोष हुआ—'अब बुखार तो नहीं है ?' उसने पूछा—'सिर में दर्द है ?'

'नहीं, कुछ भी नहीं है, तू अपने लिए कुछ बनाले।'

'चाय बना दूँ या दूध गरम कर दूं ?'

'मुझे तो बिल्कुल ही भूख नहीं है।'

'बिना खाये–पीये कैसे चलेगा ?'

'भूख ही नहीं है, मैं क्या करूं ?'

उस समय तक उसने बच्चे को गोद में ही नहीं लिया था, इसलिए वह अपनी माँ की तरफ़ दोनों हाथ फैला कर रो रहा था। तब मैना झल्लाकर बोली—'मर रहा है क्या ? कुछ करने भी देगा, अभागे कहीं के। जब से पैदा हुआ, घर में चैन ही नहीं।' और उसने उसे गोद में ले लिया और दूध मुंह में दे दिया,' क्या है इसमें, ले मर, चूसता रह।'

उस समय नारायण दुखी हो गया। उसकी बीमार हड्डियां कराहने लगीं—, 'कुछ खाती-पीती तो है नहीं, सुबह एक घूंट पानी पीकर निकली है, कुछ बनाकर खाले, दूध आयेगा कहां से ?'

मैना बाहर निकल कर चूल्हे के पास आ गई। वह कुछ भी नहीं बोली थी। शायद उसकी आंखें डबडबा आई।

बच्चा उस समय चुप हो गया था। उसे एक ओर बैठा कर उसने चूल्हा जला लिया।

चाय की पतीली चूल्हे पर रखकर मैना गाय का दूध दूहने चल पड़ी, बच्चा रोता हुआ उसके पीछे घुटनों के बल चल पड़ा था। जब तक मैना दूध निकालती रही, वह दूर बैठा रोता रहा। चाय की पत्तियां डालकर उसने एक बार फिर बच्चे को गोद में लिया, धुएँ से उसकी आखें भर गई थी। वह बाहर निकल आई और कोठे में गई। बच्चा चुप तो हो गया था, लेकिन आंसू अब भी लटक रहे थे। मैना का लटका हुआ मुंह नारायण के चेहरे पर टिका हुआ था। 'चाय बन रही है, पीओगे न ?' नारायण ने कहा—'वैद ने तो चाय को मना नहीं किया था।'

'या दूध गरम कर दूं ?'

चाय ही ले आ, थोड़ी-सी पी लूंगा,' दबी हुई आवाज में नारायण ने कहा।

'चाय के लिए जी करता है न !'

'जी तो किसी के लिए नहीं करता।'

मैना ने फिर चूल्हे को सम्भाला। आग बुझने को थी। उसने फिर लकड़ी डाली। आग पतीली को पार करती हुई ऊपर निकल गई थी। मैना ने दूध डाला और वहीं बैठ गई।

टूटे हुए दो कपों में चाय डाल कर मैना नारायण के पास नीचे ही आ बैठी। नारायण थोड़ा सहारा लेकर बैठ गया और चाय पीने लगा। मैना उसी की ओर देखती जा रही थी। शरीर कितना क्षीण हो गया था, मैना ने चिमनी की रोशनी में जान लिया। बच्चा रोता हुआ मैना की ओर सरकता हुआ आ रहा था। केवल दो घूंट पीकर नारायण ने चाय छोड़ दी, 'बस, इतनी ही पीऊंगा।'

'कुछ और पीओगे ?'

'मन नहीं करता।'

मैना का ध्यान तो नारायण की ओर था कि बच्चे ने मैना के कप के हाथ मारा, चाय बिखर गई, बच्चे का हाथ जल गया।

'मर गया तू, पैदा होते ही मर नहीं गया, जल्लाद कहीं के' मैना ने झल्ला कर कहा। बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा था। मैना ने बच्चे का

हाथ पोंछा और उसके फूँक मारने लगी। बच्चे के चेहरे पर आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदे झलकने लगी थी। मैना के आंसू सूखने लगे थे जैसे कि जिन्दगी का यही ढर्रा है और उसे इसी तरह जीना पड़ेगा।

चिमनी जल रही थी। वह बाहर का फाटक बन्द कर भीतर आ गई। बच्चे की सिसकियां तब तक धीमी पड़ गई थीं। नारायण ने चेहरे पर कपड़ा डाल लिया था और भीतर ही भीतर 'ऊँह' 'ऊँह' करने लगा था। मैना ने कई बार कहा है, 'आप ऐसा न किया करें।'

'मेरा मन ऐसा करने को करता है।'

'लेकिन मुझे तो…………'

तब वह बन्द हो जाया करता था, लेकिन कभी-कभी वह भूल जाया करता, तब फिर करने लग जाता था। मैना भी धीरे-धीरे आदी होने लगी थी।

मैना के पास पीने के लिए चाय नहीं रही थी, सारी बिखर तो गई थी। उसने घड़े से पानी लिया और एक घूंट पानी पी लिया, बच्चे को गोद में लेकर सो गई। नारायण ने दम घुटनी आवाज में पूछा, 'तूने कुछ खाया ही नहीं है?'

'मुझे भूख ही नहीं है।'

'खा लेती तो बच्चे को कुछ मिल जाता।'

'कहां मरता है बच्चा? दिन भर चीचड़ की तरह चिपटा तो रहता है,' मैना ने झुंझला कर कहा।

नारायण फिर 'ऊँह ''ह' करने लगा था। मैना ने फिर एक स्तन बच्चे के मुंह में दे दिया। दूध था ही नहीं, वह तो अपने मुँह का ही रस पी रहा था। उसे चैन मिला और वह सोने लगा था। मैना को नींद नहीं आ रही थी। चिमनी अब भी जल रही थी। उसे याद आने लगा था कि वह एक दिन इस घर में दुल्हन बन कर आई थी। सारे अंग यौवन के रंग में रंगे थे। सारी जवानी नये कपड़े और गहनों से सजी थी। मुँह देखने वालों ने उसे सराहा था। थोड़े ही दिन तो हुए हैं उन बातों को, लेकिन इतने दिनों में ही वे दिन पता नहीं कहां उड़ गए। कुछ दिनों में ही उसका

पेट फूलने लगा। पति की बीमारी के एक झोंके ने उसका यौवन छीन लिया, सुख-शान्ति सबकुछ बीत गई जैसे कि कभी आई ही नहीं थी। आंगन में भी अकेली और खेत में भी। इतना सोचने पर उसका मन गीला हो गया और आंखें पिघलने लगी। वह चाहने लगी कि एक बार वह पूरी चीख से रो दे ताकि उसके दिल की उभरी हुई सारी गाठें फूट कर बाहर निकल जाएं। उसी समय फिर पति के कराहने की आवाज आई और उसकी कल्पना फिर सूख गई। उसने पूछा, 'क्या तकलीफ है ?'

'गला सूख रहा है, पानी दे दे।'

मैना उठी और उसने घड़े से लोटा भर कर पानी दे दिया। नारायण ने थोड़ा-सा पानी लिया। मैना ने पूछा 'अब ठीक है ?'

'ठीक हूं, लोटा नीचे रख दे, अपने-आप ले लूंगा। तू सो जा थोड़ी नींद ले ले। दिन भर की थकी है।'

'दवाई ले ली थी न दिन में ?'

'क्या होता है दवाई से ?'

तब मैना को क्रोध-सा आया था। उसने क्रोध के स्वर में कहा, 'दवाई तो ले ली होती।

उसने देखा कि पुड़िया ज्यों की त्यों पड़ी है। उसने एक पुड़िया खोल कर दवाई दे दी। नारायण ने ले ली।

नारायण को नींद नहीं आ रही थी। वह वैसे ही आह भरता रहा। बच्चा मैना से चिपट कर सोने जा रहा था। मैना दिन भर की थकी थी, उसकी भी आंख लग गई। अचानक उसकी नींद उचट गई। कोई छिपा हुआ दर्द फिर जाग गया। बच्चा अलग होकर सो गया था। उसने नारायण की ओर फिर निहारा। उसने पूछ भी लिया, 'क्यों जी, क्या हाल है ?

नारायण ने फिर 'ऊँहू···हूं' की ध्वनि शुरू कर दी। चिमनी अब भी जल रही थी। उसकी इच्छा हुई कि वह खड़ी होकर चिमनी को बुझा दे, लेकिन उसे आलस आ गया। वह [illegible] ी। उसे फिर नींद आ गई। चिमनी वैसे ही जल रही थी

कल ज्योंही घर पहुंचा वह लिफाफा मेरे पैरों मे आ गया था। डाकिया उसे किवाड़ के नीचे से खिसका गया था। मैंने उसका वह पत्र पढ़ा। मैं तुरन्त अपना सूटकेस लेकर स्टेशन भागा था। गाड़ी में भी बराबर उत्तेजित रहा। मेडता रोड के पश्चात् हर स्टेशन का नाम पट्ट पढ़ता रहता कि कहीं फुलेरा निकल न जाय।

फुलेरा आ गया। वह बुक स्टाल के पास खड़ी थी। मैं जानता था कि वह आयेगी, सबके सामने स्टेशन पर, मुझसे लिपट जायेगी। यह उसकी कमजोरी है। कभी-कभी वह इतनी अभिभूत हो जाती है कि उसे आस-पास खड़े लोगों का बिलकुल ध्यान नहीं रहता। यह बात तो उसकी यह चिट्ठी ही बता रही है।

"प्रिय मेरे–
श्याम !

तुम चले आओ। आज मैं कुछ नहीं सुनूंगी। हाँ–तूने कहा था न कि तुम दूर रह कर भी हर पल मेरे पास रहोगे ? तुम मेरे पास हो ? क्या तुम इस समय मेरे हृदय की यह धड़कन सुन रहे हो ? देखो यह कैसे धक्-धक् कर रहा है। मैं आज स्कूल नहीं गई। दिन भर बिस्तर में डूब कर रोती रही हूँ। अब तो मेरे आँसू भी चुक गये है। रात आ गई है। सूनी रात। आज वे दोनों भी दिखाई नहीं देते। याद है न ! एक बार तुमने मेरी गोद में लेटे-लेटे कहा था,–"बीनू ! देखो आसमान में कितने तारे है, चलो हम तारे चुन लेते हैं; कभी जब अकेले होंगे तो वे हमारा मन बहला देंगे।"

तुम्हें याद होगा श्याम ! तुमने वह नीला चमकता हुआ शुक्रतारा चुना था और मैंने केसरिया मंगल ! आज वे दोनों ही दिखाई नहीं देते। वे बादलों मे खो गये हैं या बादलों ने उन्हें चुरा लिया है। सच-मुच मैं बहुत उदास हूँ। कहते हैं न दिल नाम की कोई चीज नहीं। तब फिर यह क्या सिकुड़ रहा है ! यह दर्द जैसा कुछ क्या उभर रहा है। यह घुटन कैसी है ! मेरा दम, लगता है, बुलबुले की तरह काँप कर डूब जायेगा ! सच श्याम ! दूर हो कर पास रहने की बात ! तुम को और गहरा भले ही बना दे, मुझे नहीं दे सकती।

जब से मैंने यह अखबार पढ़ा है लगता है। मेरा हृदय बाहर, निकल पड़ेगा मैं ढेर हो जाऊँगा। बस तुम चले आओ।

तुम पास होते तो और बात थी, शायद तुम्हारा दर्शन मुझे शान्त कर पाता! आज मैंने इस समाचार को अनेकों बार पढ़ा है। मुझे लगता है श्याम! कि यह हमारी खबर है इसका एक-एक शब्द जैसे कीट बन कर मेरे दिल को नोच रहा है। इस कचोटने से मांस टूटता है, खून रिसता है। जिन्दा मांस! जिन्दा खून!! और मेरी स्थिति क्या बताऊँ! तुम स्वयं आकर देखना।

अखबार की कतरन भेज रही हूँ। तुम इसे पढ़ना!
"प्रेमी युगल ने आत्म हत्या की :—

उदयपुर से कुछ मील दूर एक झील के किनारे। पगडण्डी पर ग्रामीणों ने देखा—एक युवक युवती एक दूसरे से चिपके हुए मृतावस्था में लेटे हैं। पुलिस अधिकारी ने हमारे संवाददाता को बतलाया कि ये दोनों गुजरात के रहने वाले हैं। युवक-अभी इंजिनियर बना था और युवती डॉक्टर! दोनों सम्पन्न परिवार के थे। आठ दिन पहले वे उदयपुर के 'ताज' होटल मे ठहरे। पूछ-ताछ से ज्ञात हुआ कि वे दोनों दिन भर होटलों, सिनेमाओं, पहाड़ों मे घूमते रहते। कभी किसी झील में तैर रहे हैं तो घंटो साथ-साथ तैर रहे हैं। कभी सोये हैं तो बीसो घंटे सोये हैं। कभी घूम रहे हैं तो घूम ही रहे हैं। घूम रहे हैं बन्धन हीन! बाधा हीन! सात दिन तक यही क्रम चलता रहा। आठवें दिन प्रातः डेढ़ हजार रुपये होटल का बिल चुकाया और वहाँ से चले गये।

मृतकों के पास मिली डायरी का अन्तिम पृष्ठ हम छाप रहे है
"हम आज सार के सुखीतम प्राणी है। पिछले सात दिन हमने सात युगों के स गे है। अभी भी हमारे पास इतना धन और ऐसा बल है कि हम र को और भोग सकते है। परन्तु नहीं। यह सुख ताजा नहीं, बासं । अभी कुछ मिनट बाद हम हमेशा के लिए एक गहरी नींद में सं. .... । । हम दोनों स्वेच्छा से जिये हैं और आज स्वेच्छा से मर रहे है। हमे किसी से कोई शिकायत नहीं। प्रमाण पत्र, स्वास्थ्य, नौकरी, धन जिसके लिये लोग आत्म हत्या करते है, ये सब हमारे पास है।

[म] आत्म हत्या नहीं, आत्म–निर्वाण प्राप्त करने जा रहे हैं। हमारे'पर्स' में [ए]क हजार रुपये हैं, हम अपनी इच्छा से ये रुपये पुलिस थानेदार को देते [हैं], ताकि हमारा मरना उसे अखरे नहीं।

हम समझते है कि इसके बाद कोई नहीं पूछेगा कि हम ने यह [क्]यों किया ! फिर भी यदि कोई जानना चाहे तो हम अपना मन्तव्य [य]हाँ लिख रहे हैं:—

—हम मर नहीं रहे हैं। हम अपने सुख को अमर कर रहे [हैं]। हम नहीं चाहते कि इस सात युगों के भोगे हुए सुखों पर कोई थेगडी [ल]गे। हम नहीं चाहते कि हम से जन्मने वाले मासूम बच्चे इस घृणित [सं]सार के सन्देह भरे घृणित प्रश्नों को झेले, कुण्ठित और पागल बन कर [स्व]यं से गिला करते हुए आत्म–हत्या करें। चूँकि हम इस जग की भाषा [क]हीं नकार सकते। हम दोनों हिन्दु–मुसलमान हैं। जो गोलियां हमने [थो]ड़ी देर पहले खाई थीं उनका असर हो चुका है। अब हम यहाँ केवल [च]न्द क्षणों के मेहमान है। दुनिया वालो सुनो ! हम तुम्हारी दुनिया से [जा] रहे हैं। हम लौट कर आयेंगे ! पर कब ? जब तुम्हारा यह धर्म, [जा]ति और ऊँच–नीच अह पैबन्द लगा लबादा फट जायेगा। यह जग [उत]ना ही स्वच्छ, मुक्त और निर्लिप्त बन जायेगा, जितने आज हम है। [एक] मन ! एक तन !! ओ जग ! अ......ल......वि......दा ! "

.., श्याम ! तुम लौटती गाड़ी से मेरे पास आ जाओ ! मैंने युग–युग [तुम्हा]री प्रतीक्षा करने की जो बात कही थी, वह झूठ थी। वह मेरा दम्भ [था]। मैं अब अकेली नहीं जी सकती। तुम चले आओ। क्या हम भी [इन प्र]श्नों को युगों में नहीं बदल सकते ? क्यों, नहीं। हम भी बदलेंगे। जरूर चले आओ। आओगे न !

तुम्हारी प्रतीक्षा मे
'वीनू'

...मैंने उधर की खिड़की बन्द करली। बत्ती बुझा कर एक तरफ हो गया। मैं अंधेरे, हुआ उसे, इधर–उधर आगने देखता रहा।

/ प्रतिलिपि–चार

गाड़ी ने सीटी दी। मैंने अपनी दोनों आँखें बन्द करलीं। मैं जयपुर पहुँच गया हूँ। मुझे फुलेरा उतरना था। मैं स्वयं नहीं जानता कि मैंने ऐसा क्यों किया? तुम चाहे भले ही मुझे कायर कहो। मैं सच्च कहता हूँ, मैंने आत्म-हत्या नहीं की है। वीनू! तुम मेरा इन्तजार करना! मैं आऊँगा। अवश्य आऊँगा। जब बादल हट जायेंगे। आसमान साफ होगा। सुन! अमृत! वीनू! अकेले बैठकर अमृत पीने वाले देवताओं और जहर पीने वाले शिव में कौन महान्! कौन अनुकरणीय! हाँ तुम सोचना वीनू! मुझे लिखना। हाँ!

# मुलाकात

वासुदेव चतुर्वेदी

देहरादून एक्सप्रेस स्टेशन छोड़ चुकी थी। मैं उस तार को खोल कर सरसरी निगाह डाल लेता हूं। विषय विशेषज्ञ के रूप में मुझे बुलाया गया था। नये सत्र के लिए स्टॉफ की नियुक्ति करने के लिए मुझे भी इण्टरव्यू बोर्ड में बैठना था।

फर्स्ट क्लास के डिब्बे में पंखे की खड़खड़ाहट के अलावा दूसरी बर्थ पर लेटे मुसाफिर का भी अहसास हुआ। सोचा डिब्बे में मैं अकेला नहीं हूं। मैंने समय बिताने की दृष्टि से हाल ही में खरीदा हुआ उपन्यास निकाला और पढ़ने में तल्लीन हो गया। गाड़ी एक के

बाद एक स्टेशन छोड़ती हुई, अन्धेरे को चीरती हुई भागी जा रही थी।

सुबह मुझे पहुंचते ही इण्टरव्यू के लिए व्यस्त हो जाना पड़ेगा। भिन्न-भिन्न योग्यताओं वाले उम्मीदवार अपनी योग्यता के आधार पर चयन के लिए आयेंगे। मुझे उनकी योग्यता को देख कर कुछ विषय सम्बन्धी प्रश्न पूछ कर उनमें से कुछ ही का चयन करना है। विचार एक के बाद एक उसी प्रकार घेरे हुए थे जिस प्रकार सिफारिशी चिट्ठी पाने के लिए उम्मीदवार किसी को घेरे रहते हैं।

एकाएक गाड़ी सीटी देती हुई झटके के साथ रुकी। एक चीख मेरे डिब्बे में सुनाई पड़ी। हड़बड़ाहट में मेरे सिर पर भी हल्की-सी चोट आई। सिर भन्ना गया था। मैंने उपन्यास बन्द किया और उस सहयात्री की ओर बढ़ने के लिए अपनी बर्थ से उतरा। मैंने मुड़ कर देखा तो वह भयभीत थी। गाड़ी के एकाएक रुकने से चीख उसी की थी। आंखें नींद के कारण अलसाई हुई थी। सिर के बाल बिखरे हुए थे। शरीर से लगता था वह गौर वर्ण की नवयुवती थी। कपड़ों से सादगी टपकती थी लेकिन आधुनिका लगती थी। मुझे देख कर वह सहम गई। अपने को सम्भालती हुई वह बोली, 'माफ कीजियेगा, मैं तो डर ही गई थी। कहीं एक्सीडेंट न हो गया हो। शुक्र है भगवान का कि मैं सही सलामत हूं। आप कहां तक जायेंगे?'

'जी मुझे देहली जाना है सुबह पहुंचूगा', मैंने कहा।

'बहुत-बहुत शुक्रिया। मुझे भी देहली जाना है। चलो, अकेली नहीं हूं। आपकी वजह से समय गुजर जायगा', उसने राहत की सांस लेते हुए कहा।

मैं भी आश्वस्त हुआ कि डिब्बे में जो सहयात्री है वह एक नव–युवती है। मुझे भी वहीं उतरना है जहां वह उतरेगी। मैं अपनी बर्थ पर लौटने ही वाला था कि वह बोली, 'बैठिये न, अगर आपको एतराज न हो तो?'

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया केवल देखता भर रहा। उसके पास ज्यादा सामान भी नहीं था। मेरी बर्थ पर खुली पुस्तक के पन्ने फड़फड़ा रहे थे। जिन्दगी फड़फड़ाहट होती है यह मैं सोच रहा था।

वह फिर बोली, 'क्या आप नहीं बैठेंगे ? मैं तो सोच रही थी आप मेरी बात का बुरा नहीं मानेंगे। आप मिल गये इससे बढ़ कर खुशी की बात क्या होगी। उसकी आँखों में भय के चिन्ह अभी भी मौजूद थे।

'जी मैं यही सोच रहा था कि मैं वहीं लौट जाऊँ जहां मुझे लौट जाना है। बंधन और नियंत्रण भरा आग्रह भला कहा तक सुख देगा ? वह भी एक अपरिचित नवयौवना का और वह भी ट्रेन यात्रा मे,' मैंने कहा।

'यह आपकी भूल है। आप चाहते हुए भी इस आग्रह को अस्वीकार न कर सकेंगे। मे जानती हूँ आप इतने हृदयहीन नही हैं कि इस दुखिया की बात भी नहीं सुनेंगे। कहिये आप बैठ रहे हैं न ?' इतना कह कर वह चुप हो गई।

'जब मजबूरी है तो आपका आग्रह स्वीकार करना ही पड़ेगा' कहते हुए मैं उसके सामने वाली बर्थ पर बैठ गया।

'वाह आप भी क्या मजेदार आदमी हैं। आखिर तो पढ़े लिखे विद्वान हैं न। जो भी बात कहेंगे एहसान तो लादेंगे ही। मजबूरी का नाम लेकर आपने मुझे भूल-भुलैया मे डाल दिया। खैर अब आप अपने बारे में कुछ बताइये।'

मुझे लगा लड़की काफी बातूनी है। इससे पिंड छुड़ाना इतना आसान नहीं है। मैं बोला, 'मैं एक अदना-सा इन्सान हूँ। पढ़ता-पढ़ाता हूँ। जिन्दगी को घसीट रहा हूँ। शरीर का सम्बन्ध आत्मा के साथ इतना गहरा न होते हुए भी दुनियां के साथ आत्मीय हूँ।'

भौंचक्की होकर वह सुन रही थी। तब तक वह सचेत हो गई थी। मुस्कराहट उसके चेहरे पर फैल गई थी, 'खैर, आपके बारे मे मैं सुन चुकी हू। अब मैं अपने बारे में भी कुछ बता दूं। मैंने गत वर्ष एम०ए० फर्स्ट डिविजन से पास किया है। मेरा नाम नीलिमा रस्तोगी है। बचपन मे ही मां बाप का साया उठ चुका था। पढ़ाने लिखाने का काम मेरे पिता के एक मित्र ने किया था। उन्होंने मुझे अपनी बेटी की तरह पाला था, पढ़ाया था। अब मैं सोच रही हूं उनके उपकारों का बदला चुकाऊँ।' इतना कह कर वह गम्भीर हो गई थी।

'यों आप कौनसी नौकरी चाहती है ताकि आप उनके उपकारों का बदला चुका सकें ?' मैंने पूछा।

'कल डी०ए०वी० गर्ल्स कॉलेज मे लेक्चरर का इण्टरव्यू है। अगर मेरा सेलेक्शन हो गया तो कोई दिक्कत ही नहीं। बताइये इण्टरव्यू मे क्या-क्या पूछा जा सकता है। यों समझिये मैं इण्टरव्यू ही दे रही हूं।'

मैं भौंचक्का होकर देखने लगा। कल जब यह मुझे सेलेक्शन बोर्ड मे देखेगी तो क्या सोचेगी। 'भगवान ने चाहा तो आपका सेलेक्शन हो जायेगा। इण्टरव्यू मे क्या पूछा जायगा यह तो मैं क्या कह सकता हूं। अच्छा यह तो बताइये आपके पिता के मित्र किस पद पर कार्य करते हैं। क्या उनके और भी कोई औलाद है ?' मैंने बात को घरेलू केन्द्र बिन्दु पर लाने का प्रयास करते हुए पूछा।

'जी वो केन्द्रीय सरकार मे सीमा शुल्क अधिकारी है। नाम है उनका आर०बी० रस्तोगी। बड़े प्यार से उन्होंने मुझे पाला है। वे जब भी ड्यूटी से लौटते हैं मुझे ही पुकार कर कहते हैं, 'बेटी नीलू देख तो मैं आ गया क्या। तू मुझे चाय नहीं पिलायेगी।' उनके और कोई औलाद नहीं थी। वे मुझे ही अपनी बेटी मान कर प्यार करते रहे। जब मैंने उनसे नौकरी करने की बात कही तो उनकी आंखो मे आंसू आ गये थे। हिचकते हुए बोले थे, 'बेटी, मैंने तुझे अपनी बेटी की तरह पाला है। सोचता हूं तेरे हाथ पीले कर दूं तो अपने फर्ज मे छुट्टी मिले।' इतना कह कर वह मेरी ओर देखने लगी।

'तो फिर शादी के बारे में पापा की बात पर क्या कुछ सोचा आपने ?' मैंने झिझकते हुए पूछा।

'हां, इस बारे मे मैंने जितना सोचा है मैं उतनी ही परेशान रही हू। पहले तो जिस कॉलिज में मैं पढ़ती थी उसी कॉलिज के एक छात्र की ओर मैं आकर्षित हुई। बाद मे पता चला कि जो कुछ वह है वह नहीं है। इन्सानियत की आड़ में वह एक खूंखार भेड़िया है जिसने कई कलियों को खिलने से पहले ही मृत्यु की मौत मे झोंक दिया। भगवान का शुक्र है कि मैं डूबने-डूबते बची, संभल पाई।' इतना कह कर उसने चैन की सांस

थी। 'अच्छा, यह बात थी लेकिन एक बात समझ में नहीं आई कि आज-कल के लड़के-लड़कियाँ इतनी स्वच्छंद चरित्रता को क्यों पसन्द करते हैं?' मैंने पूछा।

'यह केवल पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव है। पश्चिम की नकल करते हुए आज जिस अंधानुकरण की दौड़ में हमारे यहाँ के युवक-युवतिया भाग रहे हैं, एक दिन वह सर्वनाश की ओर ले जायेगा,' उसने जम्हाई लेते हुए कहा।

गाड़ी रात के अन्धेरे में सरपट दौड़ी जा रही थी। घड़ी देखी तो रात के दो बज रहे थे। मैंने उससे कहा, 'अच्छा अब थोड़ा विश्राम कर लें फिर सुबह बात करेंगे।' मैं अपनी बर्थ पर लौट आया। वह भी मुंह ढक कर सो गई।

गाड़ी स्टेशन पर पहुँची तब तक नींद खुल चुकी थी। डिब्बे में एक-दो यात्री और आ गये थे। लेकिन वह उस बर्थ पर नहीं थी। सोचा मेरी नींद खुलने से पहले ही वह उतर चुकी होगी।

स्टेशन पर जब कुली को आवाज देने वाला ही था कि मेरे एक मित्र जो मैनेजमेंट की ओर से मुझे लेने आये थे दिखाई दिये और मेरा सामान उठवा कर चले। जब तक मैंने स्टेशन न छोड़ा मेरी आँखें उसे ढूँढती रहीं।

इण्टरव्यू। एक के बाद एक उम्मीदवार आते रहे। उन्हें विषय सम्बन्धी प्रश्न पूछ कर रवाना करता रहा। उम्मीदवारों की लिस्ट को जब मैंने ध्यान से देखा तो नीलू या नीलिमा नाम की कोई लड़की इण्टरव्यू में नहीं थी। हैरानी हुई यह देख कर।

सायंकाल जब मैं सभी का इण्टरव्यू ले चुका तो मैंने अपने उन मित्र से पूछा, 'क्या सभी उम्मीदवारों के फार्म आपने सावधानी-पूर्वक चैक किये थे? कोई फार्म रिजेक्ट तो नहीं हुआ? उनमें नीलिमा रस्तोगी नाम की किसी लड़की का फार्म तो नहीं रह गया?'

'कौन नीलिमा? कहाँ की रहने वाली?' उन्होंने आश्चर्य से पूछा।

'कानपुर के एक सीमा शुल्क अधिकारी आर० बी० रस्तोगी की

लड़की नीलिमा रस्तोगी। वह कानपुर से ही मेरे डिब्बे में यात्रा कर रही थी। शायद इसी कॉलेज में आज उसका इण्टरव्यू भी था,' मैंने कहा।

वे खिलखिला कर हंस पड़े, बोले, शायद आपको मालूम नहीं है नीलिमा और मैं साथ पढ़े हैं। मेरा उनसे रोमांस भी चला था। कॉलेज में सबसे ज्यादा चुलबुली और खूबसूरत थी वह। एम०ए० उसने फर्स्ट डिवीजन से पास किया था। लेकिन मेरा ही दुर्भाग्य था।

'क्यों ऐसी क्या बात थी ?' मैंने पूछा।

'वह लेक्चरर के लिए गत वर्ष इसी कॉलेज में इण्टरव्यू देने आ रही थी। ट्रेन एक्सीडेण्ट होने से कानपुर और देहली के बीच वह भी एक्सीडेण्ट की चपेट में आ गई। मेरे भी सिर में चोट आई थी लेकिन मैं बच गया था।' वे बोले।

'तो क्या नीलू मर चुकी ?' मैंने पूछा।

'जी, मैंने उसकी क्षत-विक्षत लाश अपनी आँखों से देखी थी। मैं भला उसे कैसे भूल सकता हूं।' वे आश्चर्य चकित परेशानी के भाव लादे हुए बोले।

'तो फिर रात को जो जानकारी उसने दी उसके मुता-बिक अगर वह नहीं है तो प्रश्न उठता है वह कौन थी ?' मेरा सिर चक-राने लगा। किसी काम को करने की शक्ति अब शेष नहीं थी। एक अनजाना भय दिल में बैठ गया था।

अनमना-सा मैं कानपुर लौट आया। मित्र द्वारा दिये गये सीमा शुल्क अधिकारी के पते पर उनके घर पहुंचा। उनसे बात-चीत के दौरान पता लगा कि नीलू उनके मित्र की लड़की थी और गत वर्ष ट्रेन दुर्घटना में मृत्यु की चपेट में आ गई।

मैंने उनसे उसका कोई फोटो दिखाने की बात कही तो वे तुरन्त उठे और उसका फोटो ले आये। ये फोटो उसी का था जिसने ट्रेन में मुझसे बातचीत की थी।

मैंने फिर पूछा, 'यहां से वह किस इरादे से गई थी ?' वे बोले,

'इन्हीं दिनों गत वर्ष दिल्ली नौकरी के सिलसिले में इण्टरव्यू देने जा रही थी। ईश्वर को मन्जूर न था। वह हमें छोड़ कर चली गई। देखिये न इस फोटो के अलावा उसकी कोई निशानी हमारे पास नहीं है। अपने सभी प्रमाण-पत्र वह साथ ले गई थी, उनका भी तो पता नहीं है।' इतना कहते-कहते उनकी आंखें नम हो गई थी।

अब सोचता हूं, सचमुच क्या वह उस रात इण्टरव्यू देने आई थी और उसे केवल इसी प्रकार का इण्टरव्यू देना था। आज भी वह घटना एक प्रश्न चिन्ह उपस्थित करती है—वह कौन थी ?

# भँवर के बुद्बुदे

जयसिंह चौहान "जौहरी"

तुम्हारी यह तेरहवीं चिट्ठी मेरे चालीसवें वर्ष पर इस तरह उतर आई, जैसे अंतिम अपोलो यान चन्द्र पर। उस समय मेरी समझ से बाहर की बात थी, ऐसा सोचना कि, यह चिट्ठी तुम्हारी थी। उस पर प्रेषक का तुम्हारे हाथ का कोई संकेत ही नहीं और न ही पते पर राइटिंग। चूंकि संकेत स्थल से तुम्हारा नियंत्रण जो था इस पर, यह ठिकाने आकर रुकी। किसी तरह का व्यवधान नहीं हुआ। यदि यह अपोलो गुमराह भी हो जाता तो अन्तर्पृष्ठों से छानबीन कर परिशोधन—सम्पादन की भाँति नियत स्थल पर उतारने की गुंजाइश थी इसमें।

किन्तु तुमने अप्रकाश्य-परिवेश में इसे उतारने की भली सोची ।

तुम्हारा यह कार्य स्नेहातिरेक का द्योतक है, मैं अनुभव करता हूं। तुमने साग्रह यह चिट्ठी मेरी वर्षगांठ पर मेरे हाथ में पहुँचाई, तुम्हें बधाई। इसकी पंक्ति-पंक्ति में उपलब्धियों और उदात्त अनुभूतियों का अम्बार मुझे दिखाई दिया।

कभी तुमने नीरसता और सरसता के संदर्भों की परिधियों को समझा भी है ? या यों ही भावुकता में आरोपित छिछली जलधार में बह जाने की सोची है।

पत्र खोलते ही पँखुरियाँ बिखर गईं मेरी झोली में, ये पँखुरियाँ रंग-बिरंगी थीं। बागवाँ और बगीचे के दिन गये इस युग में। रसाल-पादपों की जगह अरण्ड और गुलाब की जगह कैक्टस उगाये जाने लगे हैं। हरी सब्जियों के शौक़ीन लोग बरंडों में लटकते गमलों में उसे पनपा कर अपना शौक पूरा करते है। कल्पना हुई ये पँखुरियाँ कागज़ से तराश कर बनाई होंगी तुमने। क्योंकि कम से कम तीन रंग की पँखुरियाँ-श्वेत, रक्त और पीत वर्ण की, तुम किस बगीचे से मेरे लिये, मेरे तोके के निमित जुटा सकती हो ? लेकिन नहीं, ये तो वास्तविक फूलों की पँखुरियाँ ही थीं। तुमने मेरे उपहार में प्रकृतिजन्य कुसुम और रंगों का संधान कर मुझे कृतकृत्य किया। श्वेत रंग ने मुझे सात्विकता दी, रक्त ने अनुरंजन व पीत ने परिजाग्रनि। यही तो शुभापेक्षा थी तुमसे मुझे।

यह बात तो पूर्वाभास की निकाय में बाँध कर रख दी तुमने। पर जो कुछ था वह तो तुम्हारी लेखनी की पटुता में था। तुम्हारे पत्र-प्रारंभ के अक्षर की मोटाई टिमटिमाते तारों के मध्य चन्द्र की मोटाई के-अनुपात की थी जिसकी सुडौलता में मैंने अपनी जन्मकुण्डली का भावभीना एहसास किया।

तुम्हारी लेखनी की प्रांजलता, अकृत्रिमता और अ-तनाव के सम्बन्धों के छोरों को छूती हुई चलती गई -चलती गई। और एक-एक विचार, यथार्थ संगति के साथ पैरापाक की उपलब्धि बन कर उभर आया तुम्हारे पत्र-अंशों पर, और अब मेरे अभिषिक्त मन पर।

तुम्हारे, मेरे प्रति विचारोन्मेष के अवतरणों मे जो कुछ विद्यमान है, वह सब तुम्हारा है। तुमने तो लिख कर यह संतोष किया होगा कि यह सब कुछ मेरे लिये है। तथ्य के अतिरिक्त और कुछ होना भी तो नहीं चाहिये, हम दोनों के समझने के लिये। अब जैसी कि मेरी अपनी दृष्टि रेखा है– यह तुम्हारी प्रस्तुति व अभिव्यक्ति-राशि तुम्हारी अपनी धरोहर है, मैं इसे सुरक्षित रख देता हूँ। यह मुझे रस देती रहेगी, मुझे राह देती रहेगी, मुझे दर्द देती रहेगी। "दर्द देना" तुम कहीं गुनाह की श्रेणी मे, या विक्षोभ व पीडा के सीधे अर्थ तक मत ग्रहण करना, मेरे कथन पर। दर्द और पीडा से अभिसिंचित होकर ही तो स्नेह पल्लवित होता है। इसलिये पुनीत् स्नेह के अक्षुण्ण रहने की बात तक आकर मैं रुका हूँ। इसके अतिरिक्त और कोई गूढ़ रहस्य इसमे नहीं है।

एक बात और है, तुम्हारे कृत मात्सल्य, सत्य और स्नेह की अभिव्यंजना मे अभिव्यक्त साग्रहपन और संवेदना के अंशो को तुमने रेखांकित नहीं किया। यह भी तो तुम्हारा अपना ही शिल्प था। यह चीज क्यों अवशेष रखदी तुमने ? क्या शीघ्रता थी ? जन्मगाठ का यह पुनर्प्राप्य दिवस चुकना था, और तुमने अपना पत्र प्रारंभ विलम्ब से किया होगा। इसलिये ? किन्तु इससे क्या ? अब तक तो जीवन का सुस्वर ही चुक गया। जीवन का गीत चुक गया, जीवन का रस बीत गया, फिर वर्षगांठ का दिन बीत गया होता तो कौन सी विशिष्ट क्षति का विषय था ?

वैसे पत्र की भूमिका तो तुमने बहुत पहले सृजित की होगी। मन के अन्तराल मे उत्पन्न भावार्पण्य अपने आराध्य के निमित्त प्राकट्य् से कहीं आगे होता है। जिस निमित्त तुमने पत्र लिखने की तल्लीनता ली होगी, भूमिका के भीतर मे अवगाहन किया होगा, वही क्षण तो परम मुहूर्त था, तुम्हारी ओर की वंदना का, अर्चना का।

फिर क्यों कर उन अभिभूतार्पण्य पंक्तियों के नीचे सार्थक्य की छाप छोड़ने से वंचित रहीं तुमने, जिसकी गहराई में संचित स्नेह राशि का अडिग हिमाचल था।

- कदाचित इतना-सा कार्य तुमने मेरे अपने हिस्से का मान कर छोड़

दिया है। और इसलिये तुम्हारी भाव उत्कटता की अभिव्यक्तियों को एक तूलिका से नहीं, अपितु नील-स्याही के पैन से चिन्हित कर रहा हूँ। तुम्हारी सौहार्द पूर्ण उन पंक्तियों की तलहटी में मैं अपनी भिन्न उमँग और भिन्न गति से अब पंक्तियाँ खींच रहा हूँ, जिन्हें तुम्हारे हाथों तुम्हारी रोशनाई में लिख जाना था।

इसलिये वो पट्टी, मेरे लिये तुम्हें सुरक्षित रखनी चाहिये थी। क्योंकि मूक अर्थ देने वाले निरापद वाक्यांश, जो अर्थान्तर की गन्ध से अभिलिप्त है, पार्श्व रूप से सचित कर बंद आँखों में आहिस्ते से समझते हैं मुझे।

पत्र की अन्तिम रिक्त वेदी पर मैंने अभी-अभी जो कुछ लिख मारा है, वह सब कुछ तुम्हारे पत्र का उत्तरार्द्ध ही मानना है तुम्हें क्योंकि उसके सृजन में मैंने अपनी गाठ का कुछ नहीं खोया है। उसमे तुम्हारी ही याचना, तुम्हारा ही संयोजन, तुम्हारा ही भाव सकुलन, और तुम्हारी ही बोध प्रवणता का अवगुठन है। कही भी तुम्हारी चितनाओं के प्रति निरपेक्षता या बाधा नही आने पाई है।

अपने आप मे पत्र की परिपूर्णता की यह निर्मित द्विकोणी अन्तः चेतना का अलभ्य प्रारूप है। जहाँ कही भी अब अवरुद्धता का अवसर नही रहा है। तुम्हारे विचार भंवर के ये रिसते बुद्बुदे जिन्हे तुम्हारी अमूर्तो-पादेयता के सहारे मैंने बड़ी समीपता से सवारे हैं, और सम्पूर्ण किये हैं तुम कदाचित इन्हें अपनी उज्ज्वल अजली मे भर कर संयमित आत्मतोष कर सको।

# बहलाव

विमला भटनागर

उस सड़क पर से गुजरते समय अक्सर उसकी नजर अरविन्द आश्रम के उस बोर्ड पर पड़ जाती थी जो धूप, छाँह, सर्दी, गर्मी, आंधी—तूफान हर मौसम में अपने बड़े बड़े अक्षरों को चमकाता हुआ लटकता रहता था। जब भी वह वहाँ से गुजरी है उसके पैरों में शिथिलता आई है, दिमाग अपनी औसत रफ्तार के बजाय तेजी से चलने लगा है, और निगाहें ललचाई-सी आश्रम की तरफ उठी हैं पर वह अपनी तेज रफ्तार से सबको पीछे छोड़ती हुई आगे निकलती रही है।

रूपी को याद है कितनी ही बार उसने अशोक से

प्रश्न किया है यदि वह सहमत हो तो वह प्राश्रम से एक बच्चा गोद ले ले और कितनी ही बार प्रशोक ने सहमति दी भी है—लेकिन वह सहमति शब्दों से आगे कभी नहीं बढ़ पाई। उत्तर के बाद कभी अशोक ने इस ओर अपनी दिलचस्पी नहीं दिखाई और न कभी बात को ही दोहराया। प्रश्न व उत्तर वर्षों से अपनी-अपनी जगह अटल हैं।

आज न जाने क्यों वह अपने पर काबू नहीं पा सकी—और पाँव आश्रम की तरफ बढ़े तो कॉल बेल के पास जाकर ही रुक सके। उसने कॉल बेल का बटन अपनी पूरी ताकत से दबाया और वह किरकिरा उठी, उसे लगा उससे गलती हो गई। वह घबरा उठी—तभी दरवाजा खोलते हुए चपरासी ने पूछा—कहिये, आपको किससे मिलना है!

—मुझे! मुझे इस आश्रम की प्रबन्धिका जी से काम है। क्या वह घर में हैं? हड़बड़ाते हुए ऊषी ने पूछा।

—हाँ आप सामने वाली बैंञ्च पर बैठ जाइये, मैं उन्हें कह देता हूं- चपरासी चला गया।

ऊषी बरामदे में पड़ी बेंत की बैञ्च पर जा बैठी।

बीबी जी आपसे कोई मिलना चाहता है। कमरे में घुसते हुए नारायण ने मिसेज़ दयाल से कहा।

—कौन है?

—कोई लड़की है। बीबी जी।

—कोई और भी साथ है?

—नहीं बीबी जी, बिलकुल अकेली है।

—तुमने उनसे काम पूछा? कितनी बार मैंने तुमसे कहा है लिख रखा करो, आने वाले का नाम और काम दोनों उस पर लिखवा लिया करो, पर तुम भी अपने मन की ही करते हो नारायण।

—काम पूछा तो था बीबी जी, पर वह तो कहने लगी कि इन्हीं से काम है। स्लिप आपके कहने से पहिले रखी थी, वह तो सबकी सब खत्म हो गई। आप कहती हैं तो अभी रख देता हूं। आपको भला नाराज़ कैसे कर सकता हूं।

–अच्छा, जा, उन्हें ऑफिस में बैठा। मैं अभी आती हूं।

–अच्छा बीबी जी–नारायण जाने को मुड़ा।

–अरे सुनो; शन्नो से कहना वह चार नम्बर वाला बच्चा है ना, उसकी दवा का समय हो गया है उसे दवा दे दे।

–जी!

ऊषी बड़ी बेताबी से चपरासी के लौट आने का इन्तजार कर रही थी, जरा सी आहट से वह चौंक उठी थी, तभी चपरासी दरवाजा खोल कर बरामदे मे आया–आप ऑफिस में बैठें, बीबी जी अभी आ रही है। कहते हुए उसने ऑफिस खोल दिया। ऊषी कुर्सी पर बैठ गई।

नारायण के जाने के बाद मिसेज दयाल ने अपना गाउन उतारा, साड़ी पहिनी, चश्मा लगाया और ऑफिस की ओर बढ़ी, वह सोच रही थी आज फिर कोई बच्चा इस आश्रम की चारदीवारी से जाने वाला है। उन्होंने दरवाजा खोला, देखा मेज के सामने वाली कुर्सी पर तीस, बत्तीस वर्ष की एक महिला बैठी है। उन्हें देखते ही वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई और दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते की।

नमस्ते, बैठिए। अपनी कुर्सी पर बैठते हुए मिसेज दयाल ने बड़े ही विनम्र शब्दों मे कहा!

कुछ देर कमरे में खामोशी छाई रही, दोनों एक दूसरे के पहले बोलने की राह देखती रहीं। तभी मिसेज दयाल ने खामोशी को तोड़ते हुए कहा, कहिए, क्या काम है आपको ?

मैं, मैं एक बच्चा गोद लेना चाहती हूं। क्या आपके आश्रम में एक दो साल का कोई ऐसा बच्चा है, जिसे आप गोद दे सकें। ऊषी का दिल जोर–जोर से धड़क रहा था।

–आपको लड़का चाहिए या लड़की ?

प्रश्न सुन कर ऊषी एकाएक सकपका गई। वह शीघ्र ही उत्तर नहीं दे पाई। वह यह तो सोच कर भी नहीं आई कि लड़का गोद लेगी या लड़की। अपने को सम्भालते हुए बोली–लड़का या लड़की में क्या अन्तर पड़ता है–जिसे बच्चा चाहिए उसके लिए तो बराबर है।

लड़का तो कोई अभी इस आयु का नहीं है। हां एक लड़की अवश्य दो वर्ष की है। देखिये वह आया की गोद में खेल रही है—बाहर की तरफ इशारा करते हुए बताया मिसेज दयाल ने।

ऊपी ने देखा लड़की बड़ी मग्न होकर आया की गोद में खेल रही थी। आया उसे गुदगुदाती और वह खिलखिलाकर हंस पड़ती और जब हंसी रुकती तो कहती 'औल करो हमाले ऐसा।' ऊपी उसे देखती रही।

कहिये ! पसन्द आई ?

जी ! आप इसे मुझे दे दीजियेगा।

अभी ! आश्चर्य से भरी आवाज़ में मिसेज दयाल ने कहा।

हां, हां, मैं तो बच्ची लेने आई हूं।

क्या आप अकेली ही बच्चा पसन्द करके ले जायेगी ? आपके पति नहीं आयेंगे ? फिर फार्म पर दस्तखत कौन करेगा ? आप कल इसी समय उन्हें लेकर आ जाइये और आश्रम की सारी फार्मेलिटिज पूरी करके बच्ची को अपने साथ ले जाइयेगा।

ऊपी चुप रही। मिसेज दयाल ने देखा उसका चेहरा सफ़ेद हो गया। उसने आंखें झुका लीं और पैर के अंगूठे से धरती कुरेदती हुई साहस बटोर कर बोली, 'मैं अविवाहित हूं।'

'आई० एम० सॉरी०' मिसेज दयाल ने गौर से ऊपी के चेहरे को देखा, जो देखने में किसी भी प्रकार उसके अविवाहित होने का विश्वास नहीं दिला सकता था। नाक में मोती, कान में झूलते हुए कुण्डल, बीच माथे पर चमकती लाल बिन्दी, गोरी कलाई में खनकती हुई चार-चार लाल चूड़ियाँ। दो मिनिट दोनों की तरफ से चुप्पी रही, आखिर मिसेज दयाल ने बहनी खामोशी को तोड़ा। देखिये आश्रम के नियमों के मुताबिक हमारे यहां के फार्म पर पति, पत्नि दोनों के हस्ताक्षर होने चाहियें।

ऊपी मिसेज दयाल के मुंह से निकले शब्दों को अवाक् सुने जा रही थी, उसका इतनी देर का बनाया स्वप्नों का महल चूर-चूर हो कर उसके पांवों में आ गिरा था। वह थम कर अपने पांव ज़मीन पर जमाये

हुए थी। एक लम्बी सांस को छोड़ते हुए उसने मिसेज दयाल से कहा, 'यदि मेरी शादी ही हो गई होती तो शायद आज मैं यहाँ नही होती, मिसेज दयाल।'

—आप करती क्या है ?

—जब मेरा कार्य नही हो सकता तो आप यह जान कर भी क्या करेंगी कि मैं कौन हूं ? क्या काम करती हूं ? आप समझ लीजियेगा कि मैं कोई भी नहीं हूं—वह खिसियानी सी हँसी और हाथ जोड़ कर कुर्सी से उठ खडी हुई—नमस्ते। आपका इतना समय खराब किया इसके लिए क्षमा चाहती हूं।

अरे ! आप तो जा रही है बैठिये, बैठिये—अभी तो नहीं, परन्तु कल मैं कमेटी के अन्य सदस्यों की राय लेकर इस सम्बन्ध में कुछ और बता सकूंगी। आपका शुभ नाम क्या है ?

—ऊषी

—ऊषी जी यदि आप बुरा न मानें तो व्यक्तिगत रूप से आपको एक राय देना चाहूंगी। एक महिला होने के कारण जीवन के उतार, चढ़ाव के अनुभव मुझे भी हैं। अकेले जीवन गुजार देना उतना आसान नहीं है जितना सोच लेना। आप शादी कर लीजियेगा। मिसेज दयाल ने आखिरी वाक्य कहते समय अपना चश्मा कुछ ऊपर किया पता नहीं ऊषी के चेहरे पर आने-जाने वाले भावों को पढ़ने के लिए या अन्तिम वाक्य को कहने का साहस जुटाने के लिए।

शादी............अब ! इस उम्र में।

हां, हां, क्यों नहीं ? अब क्या हो गया है ?

—ऊषी फीकी सी मुस्करा दी।

ऊषा जी आप सोचती हैं कि यह बच्ची आपके अभावों की पूर्ति कर देगी ? सच मानिये यह आपका भ्रम है। हां भ्रम में ही पलना चाहें तो बात दूसरी है। और भला फिर आपके परिवार वाले इस बात तो कब पसन्द करेंगे।

—इसमें उन्हें क्या एतराज हो सकता है भला—ऊपी ने ि
दयाल को देखते हुए कहा।

तभी तो कहती हूं आपके अनुभव अभी बहुत कम है। आप
बात अभी नहीं समझ पाएँगी। उपी एकाकी जीवन को व्यतीत करना
पर चलना है। अभी भी समय है।

ऊपी को लगा मिसेज दयाल की बात में अपनत्व है। बात क
कहते उनका गला भर्रा गया जैसे उनका अपना कहीं कोई जख्म रिस
हो।

मिसेज दयाल मैं सोचती हू मेरा एक वाक्य आपकी सारी बा
का जवाब दे देगा वह है मेरी परिस्थितियां मेरा साथ नहीं दे सकेंगी—अ
अनुभवी हैं समझ सकेंगी। छोड़िये इन बातों को कल मैं फिर इसी सम
आऊंगी किसी आशा से बंधी। अब चलूँ, पांच बज रहे हैं, कलाई प
बंधी घड़ी को देखते हुए वह जाने के लिए कुर्सी से उठ कर खड़ी हुई
अच्छा नमस्ते।

—नमस्ते।

ऑफिस से निकल कर जाती हुई ऊपी को मिसेज दयाल गौर से
देखती रहीं। उन्हें याद आया वह दिन जब वह भी यूं ही निराश होकर
लौट पड़ी थी एक दिन।

ऊपी रात को अपनी चारपाई पर पड़ी करवटें बदल रही थी।
आज नींद उससे कोसों दूर भाग गई थी और मिसेज दयाल की कही एक-
एक बात उसके इर्द-गिर्द घूमती रही थी। क्या यह सच है बच्ची जीवन के
अभाव की पूर्ति नहीं कर पावेगी? क्या यह अपने को भ्रम में पालना है?
भावना फिर बोली—भ्रम ही सही, भ्रम में दिन निकल जायें तो क्या बुरा
है। एक आधार तो मिल जायेगा—तभी विवेक की आवाज ने उसे झौंका
दिया—इस वर्तमान के जीने ने ही तो तुझे खा लिया ऊपी—यदि कुछ भी
भविष्य के बारे में सोचा होता तो क्या तू मनोज के साथ कठोर नहीं हो
जाती। फिर शायद जीवन का यह संघर्ष नहीं झेलना पड़ता। क्यों उसकी
हर बात को बच्चों की तरह से मानती गई? क्यों नहीं उसका उठं कदमों
का विरोध किया उसने? जैसे उसने मरने से ही प्रश्न किया हो—तरा तुझे

गलत और सही का फर्क नहीं मालूम था, या इतनी बुद्धि नहीं थी तो फिर क्या था ? जिसने सब कुछ जानते–समझने भी तेरी जुबान को सीं दिया । शायद तुझे अपनी दृढ़ता पर विश्वास था—तू सोचती थी कि तू अकेला जीवन काट लेगी—फिर आज क्यों बौखला गई ? सत्य देख कर घबरा क्यों गई ? भावनाओं में जीना चाहती थी क्या ? फिर उसने अपने आप से ही कहा धैर्य से कार्य कर ऊषा, हो गया सो हो गया । समझ ले तेरे भाग्य मे यही लिखा था । हार कर अपने किये की सारी वसीयत उसने भाग्य के नाम लिख अपने को अलग कर लिया । उसने करवट बदली–खाट चरमरा कर चुप हो गई । ऊषा को वह शाम याद आई जब अशोक की बहिन चन्द्रा ने कहा था, 'ऊषी दूसरे कभी अपने नहीं हो सकते । और ऊषी ने बड़ा जोर देकर कहा था क्यों नही हो सकते यह तो अपने व्यवहार पर निर्भर है चन्द्रा—किसी को अपना बनाने के लिए बहुत कुछ मिटाना पड़ता है ।

देख ऊषा बुरा मत मानना । तूने क्या नही मिटाया अपना पर क्या पाया तूने अशोक से–अशोक तो मेरा भाई है ऊषी, पर क्या कहूं जाने दे। उसने बात अधूरी छोड़ दी थी और चुप हो गई थी।

तू ठीक कहती है चन्द्रा।

मैं तो यही जानती हूं कि यदि ममता को पालना है तो सही रास्ते से अपने मे पालो, वरना उसे सुला दो, सदा-सदा के लिए। वरना ममता में फूल नहीं कांटे उगते है, ऊषी काटे।

चन्द्रा, नारी का ममत्व ही यदि सो गया तो उसमे बचेगा क्या ? उसका तो सारा व्यक्तित्व ही विकृत हो जावेगा। और यदि दबी हुई चिन्गारी पर राख कभी हट गई तो उसका रूप भी सोचा है कभी तुमने ?

ऊषी को लगा आज जो हालत उसकी है वह उसी दबे गड़े ममत्व का एक हिस्सा है। तभी तो वह स्थिर नही। अपना न सही, पराया ही सही, एक बच्चा चाहिए उसे—जो उसकी छाती मे चिपट कर सो जाय-खाट पर लेटे-लेटे उसे लगा वह दरवाजा खोलकर अभी मिसेज दयाल के आश्रम मे पहुंच जाये, और पालने में सोते बच्चे को उठाकर अपनी छाती से चिपका ले। फिर·········फिर इतना प्यार करे इतना प्यार करे कि

वह थक जाये, निढाल हो जाये। वह खाट पर बैठी थोड़ी देर बैठी रही और फिर खाट से उतर कर खिड़की के पास जा खड़ी हुई। खिड़की पर रखी सुराही में से एक गिलास पानी पिया। थोड़ी घूमी, जैसे अपने को संयत करने का प्रयत्न कर रही हो। सामने की दीवार पर नीशू का चित्र लगा था, वह उसे देखती रही, देखती रही और आगे बढ़ कर उसने उसे उलट दिया। कल सुबह वह इस चित्र को भी उतार देगी, व्यर्थ याद को भड़काता है। नीशू माँ तो उसके पास सोता था, अपनी रातों की नींद व आराम उसे सौंप दिया था ऊषा ने। ऊषा ने करवट फिर सीधी करली यहीं नीशू है, यहीं जिस सुलाने भर के लिए न जाने कितनी रातें उसने घूम कर गुजार दी—रात-रात भर उसके पेशाब में भीगी पड़ी रही। वह भी तो कभी नहीं छोड़ता था उसे जैसे उसका अपना बच्चा हो। उसके कानों में गाड़ी में बैठी नर्स के शब्द गूँज उठे, बैठने की जरा-सी जगह कर दो कब से बच्चा लिए खड़ी है। और एक तरफ के कोने पर जरा-सी जगह देते समय उसने कहा था, आपका बच्चा कितना प्यारा है। उसे लगा था वाकई वह नीशू की माँ है। ऊषा को वह रात भी याद है जब वह नीशू को शीला के साथ स्टेशन छोड़ कर वापिस आई थी, और अपने बिस्तर पर अकेली सोई थी। उसे लगा था उसका कहीं कुछ खो गया—और उसी खोने की याद में न जाने कितनी रातें उसने जाग कर, रोकर गुजार दी थीं—और आज ...आज ऊषा उससे तो क्या, उसकी याद से भी दूर भागती है। वह उसे याद नहीं करना चाहती, वह जानती है यह वह नासूर है जो छिल गया तो पीड़ा देगा। उसे लगा चन्द्रो ने ठीक कहा था, मिसेज दयाल भी ठीक कहती हैं उसे अपना निर्णय बदल देना चाहिए। उसे किसी बच्चे को गोद नहीं लेना चाहिए। उसे अपने कड़वे अनुभवों को भुला देना चाहिए चाहे उसे फिर भ्रम में पलना पड़े। यह सोचते-सोचते उसे नींद आ गई!

दूसरे दिन उसे लगा उसका मन कुछ हल्का है। समय पर वह अरविन्द आश्रम पहुँच गई। उसका चेहरा आश्वस्त था, कदमों में दृढ़ता थी।

आइये ऊषा जी।

—नमस्ते।

—नमस्ते ।

ऊषी जी ग्रापका काम.....................

बीच ही मे ऊषी टोकते हुए बोल पड़ी, नहीं, मिसेज दयाल मैंने अपना निर्णय बदल दिया है । आज मैं किसी बच्चे को लेने नहीं आई हूँ बल्कि अपनी ममता इनको बाटने आई हूँ । यदि कोई एतराज नहीं हो तो मैं घण्टे दो घण्टे यहाँ आकर अपना मन बहला जाया करूँ ।

अवश्य, अवश्य ऊषी जी—यदि एक सहयोगी मिले तो एतराज क्या हो सकता है ? अच्छा है, हम दोनों मिल कर बैठेंगे दो मन की बात करेंगे, आपका समय कट जायेगा, इन बिना मा के बच्चों को ममता मिल जायेगी और मुझे एक हमदर्द । आश्रम आपसे कुछ पायेगा ही खोयेगा नहीं । मुझे कितनी खुशी है आप जिस समय चाहे अवश्य आएँ ।

धन्यवाद, मिसेज दयाल । ऊषी उठी और बराबर वाले कमरे मे जहाँ पाँच छः पालने पड़े थे उनके पास जा खड़ी हुई । उसने पालने मे लेटे बच्चे को उठाया, उसे चूमा और बारी—बारी उन्हे खिलाया । वह खुश नजर आ रही थी, फिर भी उसे ऐसा लग रहा था कि उस फूटने वाली खुशी और उत्साह के नीचे कोई एकाकी मन बैठा है, जो चुप—चुप ढिलक रहा है । वहीं से रिस रहा है ।

# विद्रोह

विश्वेश्वर शर्मा

अब तो खैर वह हर चीज की अभ्यस्त हो गई है ? लेकिन शुरू-शुरू मेज से हर चीज विचित्र लगी थी। विचित्र ही नहीं बल्कि डरावनी-सी लगी थी। फिर यह डर धीरे-धीरे पतला होता गया, कुछ दिनों की जान-पहचान ने ही जैसे सब चीजों के रूप 'नॉर्मल' कर दिये। फिर भी अपने आप में एक अजनबीपन तो बना ही रहा।

लगाव यदि किसी से हुआ तो पिंजरे के तोते से, जो बार-बार अपनी बेबसी पर पंख फड़फड़ाता रहता—पिंजरे की शलाकाएँ चोंच से काटता रहता और लाख

राधाकृष्ण--गोपीकृष्ण सिखाने पर भी अपनी जंगली बोली में टूयां--टूयां चीखता रहता।

इस अजनबी संसार में उसे यह तोता ही अपना लगता था। शायद इसलिए भी कि उसे अपनी और उसकी स्थिति समान दिखती थी। उसमें उसके प्रति बड़ी संवेदना जाग उठी थी। शुरू से ही अपने अवकाश के क्षण वह उसके निकट खड़ी रह कर बिताती थी।

शुरू--शुरू में इसी बात को लेकर झगड़ा पैदा हो गया। उन्हें उसका अवसर तोते के पास खड़ा रहना ही बुरा लग गया। कुछ दिन टालते रहे और एक बार तो बरस ही पड़े, 'य क्या लक्षण हैं। जब देखो पिंजरे के पास खड़ी रहती हो। जैसे पूर्वजन्म का तुम्हारा मा जाया हो?'

छिछले व्यंग्य से तड़फ कर उसने एक तीखी दृष्टि से उन्हें देखा, लेकिन वे उस दृष्टि की परवाह किये बिना, 'यह सब यहाँ नहीं चलेगा। ढंग से रहा करो,' कहते हुए बाहर निकल गये।

वह बहुत देर पिंजरे के पास खड़ी यह सोचती रही कि यह क्यों नहीं चलेगा? ढंग से रहने का क्या मतलब है? और उसे लगा जैसे यह एक जेलखाना है जहां एक कैदी को दूसरे कैदी से बात करने की इजाजत नहीं। और इस अनुभूति के साथ ही उसमें एक विद्रोह जागा कि यह तोता भले ही कैदी हो सकता है, वह कैदी नहीं और उस पर ऐसी पाबन्दियाँ लगाने का किसी को कोई अधिकार नहीं।

फिर एक दिन उसके हर वक्त गुनगुनाते रहने पर बखेड़ा खड़ा हो गया। यह बखेड़ा उनकी मां ने खड़ा किया। कई दिनों तक तो वह ध्यान लगा कर उसके गीत सुनती रही और एक दिन अपनी तफ्तीश का लेखा--जोखा पुत्र के सामने रख दिया, 'आस पड़ौस के लोग सुनते हैं, क्या समझते होंगे अपने मन में? तू उसे समझाना, हर वक्त रागोटे लेना ठीक नहीं। ऐसा क्या हमने उसे फांसी पर लटका रखा है सो गाती है—बाबुल तेरी मैना पिंजरे में हो गई कैद।'

सुनते ही उन्हें जैसे गाने हो गाने में वह उनका घोर अपमान

मारेगी और जँवाई हमें कोसेगा, तब पता चलेगा कि बेटी को सिर चढ़ाने से क्या होता है ?

बरसाती पानी की तरह वह वक्त निकल गया और अब उसे लगता है जैसे बाई बापा को ठीक ही कहा करती थी। अब यहाँ कोई चीज उसके मन से मेल नहीं खाती। यहाँ कोई उसकी जिद को मान नहीं देना चाहता। उसे लगता है कि एक सूखी केरी वृक्ष से तोड़कर बाजार में रख दी गई और उसे एक शहरी ग्राहक खरीद लाया, अब सिर्फ उसका रस ही तो निचोड़ा जा रहा है। बाल संवारते हुए दर्पण देखती तो उसे शोषण के चिन्ह चेहरे पर दिखाई देने लगते। जैसे वह दुबला रही है, फीका रही है, पीला रही है।

बात बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़ गई कि यहाँ क्यों गई ? वहाँ क्यों बैठी ? इससे क्यों बोली ? उससे घूंघट क्यों नहीं ताना ? जोर से क्यों हंसी ? चुपके-चुपके क्यों रोयी ?

वह निरंतर भीतर ही भीतर टूटती चली गई। हर आदमी के प्रति एक चिढ़, उनके प्रति चिढ़, उनकी मां के प्रति चिढ़, उनके बाप के प्रति चिढ़, उनके भाई-बहनों से चिढ़, सबसे चिढ़ ··· ? अपने आप से भी चिढ़, लेकिन इस चिढ़ से छूटने के लिये अपने अन्तर्मन में निरंतर चिन्तनशील। क्या करना चाहिए ? कैसे अपनी स्थिति बनाये रखना चाहिए ? वह बराबर सोचती रहती और उसे लगता, वर्त्तमान परिस्थितियों में उपेक्षा के अलावा और कोई उपाय नहीं है।

वे कहते, "पानी पिलाना ··· ··· "

तो यह कहती, "अभी काम कर रही हूँ, खुद ही पी लो।"

उनकी मां कहती, 'बहू, जरा ऊपर तो आना।'

तो तुनक कर कह देती, 'आप ही यहाँ नीचे आ जाइये हाथ में काम लिये बैठी हूँ।" उसके इस परिवर्तित स्वरूप पर पूरे घर में प्रबल प्रतिक्रिया हुई। उनके पिताजी ने भी कहा :

"बहू आजकल बड़ी बोलार हो गई है।" उनकी बहन ने तो यहाँ तक कहा कि अब इस बात का फैसला हो ही जाना चाहिए कि आखिर

भाभी किस से किस तरह पेश आएं।

वे दाँत किट-किटा कर रह गये, 'ऐसी घुन्नी है कि जो कहो सब गटर-गटर सुनती रहती है और फिर बोलती है तो ऐसे जैसे बिच्छू ने डंक मारा।"

उनकी मां ने तो यहाँ तक कह दिया, "इसे वापिस इसके मैके भेज देना चाहिए और इसके मां-बाप से कह देना चाहिए कि बहू-बेटी के सशण सिखा कर भेजिएगा।'

लेकिन वह अपने एक ही उपाय से सुरक्षित हो गई थी। अधिक कभी कुछ नहीं बोलती। खाली आँखें निकाल कर ही ज्यादा बोलने वाले के सामने देख लेती और वही अप्रभावित-सी अपने काम में लगी रहती।

अब वह जब चाहती तब तोते के पास खड़ी हो जाती और जब चाहती तब गुनगुनाने भी लग जाती। उनकी माँ और बहिन मन ही मन कुढ़तीं? लेकिन अभी बकेगी सोचकर चुप ही रहतीं और उनके लौट आने पर उन्हें सारी दिनचर्या सुनातीं।

एक दिन सारी शिकायत सुनकर वे भभक उठे, बड़बड़ा उठे, 'हैरान हो गया हूँ इसके मारे। सारे घर को परेशान कर रखा है ··· कभी तो ऐसा गुस्सा आता है कि साली को चोटी पकड़ कर ······ '

"क्या ··· क्या बोले ··· ?" आँखों से अँगारे बरसाती वह उनके आगे बढ़ आई।

'पकड़ो···पकड़ो तो चोटी···हाथ तो लगाओ, देखूँ···चोटी पकड़ लूँ ··· तमाशा है ······'

उसका यह कालिका का स्वरूप देख कर सारा घर काँप उठा। उनका छोटा भाई हाथ पकड़ कर समझाता हुआ भीतर ले गया। सबको ये हो गया कि इसे कुछ कहना एक बहुत बड़े झगड़े को मोल लेना है। अच्छा यही है कि इसे कुछ न कहा जाय।

## पेपर–वेट

回

प्रेम·शरण सिन्हा

'सुनते हो'

'क्या है ?'

'मुझे कल रात लक्ष्मी जी सपने में दिखाई दीं।'

'हूं।'

'और सपने में साप भी दिखाई दिए।'

राजेश लिखने में मग्न था। उसे रिपोर्ट कार्यालय मे देनी थी। राधा की बातो का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसका ध्यान बस रिपोर्ट पर था। उसने किस प्रकार नगर के सेठ ताराचन्द के यहां 'रेड' की, वहा से किस प्रकार 'स्मगल्ड गोल्ड' प्राप्त किया। नगर में

सनसनीखेज घटना थी। उसने सारे प्रेस को इण्टरव्यू देने से इन्कार कर दिया। पर राधा राजेश की इस शीतलता से झुंझला पड़ी। वह कितनी उत्सुकता से अपने मन की बात कहने आई थी और ये श्रीमान् जी कलम घसीटने में व्यस्त हैं।

राधा बोली, 'न सुनो तो न सुनो, मैं चली।'

'अरे भगवान। मैं खूब सुन रहा हूं। तुम यही कहना चाहती हो कि तुम्हें सपने में लक्ष्मी जी दिखाई दी और सांप भी दिखाई दिए, इसका मतलब यह है कि आपको कहीं से अचानक धन मिलने वाला है, यही न?'- राजेश ने कलम मेज पर रखते हुए कहा।

राधा ने सिर हिला कर हाँ की।

'राधा! ये सब पुराने थोथे विश्वास हैं।'

'तुम तो भगवान में विश्वास नहीं करते हो? तुम तो यही कहोगे जैसे सारी दुनिया मूर्ख है।'

'नहीं, मूर्ख नहीं, बुद्धिमान-मूर्ख तो मैं हूं। तुम्हें धन मिलेगा और जरूर मिलेगा। बस! अब तो खुश? यह कह कर फिर वह रिपोर्ट लिखने में व्यस्त हो गया। और राधा तुनक कर अन्दर चली गई। उसको बुरा लगा सब कुछ। राजेश ने दो तीन पंक्तियां लिखी होंगी कि उसका सबसे छोटा छः वर्षीय पुत्र पप्पू आया, बोला—

'पापा, पापा, देखो मैंने ऊपर छत पर पाया। आपके लिए पेपर-वेट! अच्छा है'

'हां, ठीक है, मेज पर रख दो,' राजेश ने अनदेखे ही कहा। छोटे पप्पू को आशा थी पापा उसे शाबाशी देंगे। पर उसे निराशा हुई। उसने पापा की ओर देखा। जब कुछ नहीं कहा तब बेचारा मुंह लटका कर चला गया। राजेश ने कुछ ही और लिखा होगा कि उसके सबसे बड़े सत्रह वर्षीय पुत्र मुकेश ने कमरे में प्रवेश किया, बोला, 'पापा दस रुपये की जरूरत है। पिकनिक पर जाना है।'

'अपनी मम्मी से ले लो। मैं एक जरूरी रिपोर्ट लिखने में लगा

हूं। लगता है कि यह पूरी नहीं होगी।'

मुकेश का ध्यान पेपरवेट पर पड़ा। उसने उठा लिया, फिर बोला, 'यह क्या है पापा ?'

'पेपरवेट पप्पू को छत पर मिला।'

'पर आपने ध्यान से भी देखा है कि है क्या ?'

राजेश ने मुकेश के हाथ से वह धातु का टुकड़ा ले लिया—एक आयताकार जिस पर लाल वार्निश की हुई।

'पापा यह 'बन्द्राबैंड गोल्ड' दिखाई देता है।'

'जरा रेजमाल तो लाना, गोल्ड टैस्टर तो ऑफिस में छोड़ आया हूं।' राजेश के शरीर में एक स्फूर्ति आ गई।

'क्या गोल्ड ?' पास के कमरे से राधा ने प्रवेश करते हुए कहा।

'हां मम्मी मुझे पूरा विश्वास है। मैंने ऐसे कई पापा के ऑफिस में पकड़े हुए माल में देखे हैं।'

अब राधा की बारी थी। उसका पल्ला भारी था। वह बोली—

'देखा, मैं कहती थी न मुझे सपने में लक्ष्मी जी दिखाई दीं। पर उस समय तो आपने बात हवा में उड़ा दी। बड़ों की बातें कहीं झूठी होती हैं ?

अब तक मुकेश स्कूटर में से रेजमाल निकाल लाया था। उसने उसको एक कोने से रगड़ा। अन्दर से चमक दिखाई दी। जैसे बादलों को चीर कर सूर्य निकला हो। राजेश ने पास खड़े पप्पू से पूछा, 'पप्पू तुम्हें यह कहां से मिला ?'

'छत पर।'

'सच कहते हो ?'

'हां पापा।

'पर यह छत पर कैसे आया ?'

'कोई चील डाल गई होगी,' मुकेश ने कहा।

'और यह भी हो सकता है कि सेठ ताराचन्द ने हमें फंसाने के लिए छत पर डलवा दिया हो।'

'न ही यह किसी ने फेंका और न ही किसी ने डाला, यह तो भगवान की देन है। तुम कहते थे कि रमा की शादी पर लोन लेना पड़ेगा। भगवान ने अपने ईमानदार कर्मचारी के लिए मदद भेजी है।' राधा ने अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त किए।

'सच, तुम भी क्या सोचती हो राधा ?' मुस्कराते हुए राजेश ने कहा, फिर गम्भीर होकर कहा, 'मुकेश इसे पैक कर दो। यह ऑफिस जाएगा। वहां इसे मैं डिपाजिट करूंगा।'

'पापा यह तो हमारी अमानत है।' मुकेश ने जिरह करते हुए कहा।

'तुम क्यों नहीं समझते कि हमें कोई तस्करी का माल नहीं रखना चाहिए। उसके पीछे किसी की कोई चाल हो सकती है।'

और राधा अपने विचारों में मग्न थी। रमा की शादी के दो सैट बन जायेंगे। उसका भी एक सैट बन जायगा। वह न्यू मॉडल का बनवायेगी काशीनाथ एन्ड सन्स के यहां। बिल्कुल मिसेज सरीन की तरह। कितने ठाठ से रहती है मिसेज सरीन। सदा सजी-धजी रहती है। एक से एक बढ़िया विदेशी साड़ी। एक से एक सुन्दर जेवर। कुन्दन का सैट कितना सुन्दर है। उसका आदमी है क्या, एक कस्टम इन्सपैक्टर, उसके पति के अधीन। पर उसका घर भरा-पूरा है। राजेश के इस निर्णय ने उसे सोते से जगा दिया। वह बोली, 'यह कहां की बात हुई ? घर आई लक्ष्मी को लौटाना कहां की बुद्धिमानी है ? मान लिया हमें ईमानदारी से रहना चाहिए पर आज दुनिया में लोग ऊपर की आमदनी करते हैं और ठाठ से रहते हैं। आप नहीं लेते, साधारण जीवन व्यतीत करते हैं। उनसे अफसर खुश हैं आप से नहीं। वे आपसे पहले प्रमोशन पा लेते हैं और आपको इसके लिए कोर्ट की शरण लेनी पड़ती है।' राजेश ने एक बार अभी दृष्टि से राधा को ऊपर से नीचे तक देखा। राधा की बात में एक सत्य था। राजेश ने अपने पक्ष का बचाव करते हुए कहा —

"राधा जो हम करते हैं वह मन की शान्ति के लिए। हमें किस चीज की कमी है ? फिर इस पर हमारा क्या अधिकार। यह सरकार की

जानी चाहिए। यह वहीं जायेगी। हमे ऐसे धन की इच्छा नहीं करनी चाहिए।' राधा तुनक कर बोली—'ठीक है आपकी समझ मे जो आये करिए। मुझे क्या करना। आपने पहले भी कभी मानी है जो अब मानेंगे।'

राजेश ने जब सिर उठा कर देखा, राधा कमरे से बाहर जा चुकी थी। राजेश के हृदय की वेदना मुस्कराहट मे बिखर गई। उसने पेपर वेट को उठा कर देखा। अधिक से अधिक क्या मूल्य होगा? यही पाच, छः हजार। सेठ ताराचन्द दस हजार दे रहे थे। पर उसने लेने से इन्कार कर दिया। पर यह घूंस नही है। यह तो उसके घर मे प्राप्त हुई है। यह उसकी ही वस्तु है। राधा की बात मे एक कटु सत्य है। रमा की शादी का लोन वास्तव मे टल सकता है। बीस वर्ष नौकरी मे उसने क्या जमा किया? वह बेटी का विवाह भी नही कर सकता। उसके साथियो ने कोठिया बनवाली। ठाठ से कार मे सैर करते हैं। और वह वही किराये का मकान व पुराना स्कूटर। साथी लोग उसे ताना‌कशी करते हैं। कोई हरिश्चन्द्र व कोई गाधीजी कहता है। पर उसने कभी घूंस नही ली। पर यह कोई घूंस नही। राजेश विचारो मे डूबा हुआ था। इतने मे सरीन ने प्रवेश किया। राजेश का ध्यान टूट गया।

'हैलो सरीन! कैसे आये?'

'यूं ही चला आया सर।'

'आओ बैठो! रमा बेटी दो कप चाय भिजवाना, सरीन अकिल आये है।'

'सर अभी पीकर आया हू।'

'अरे यह भी कोई बात हुई? हा, तुम्हारे पास गोल्ड टैस्टर है?'

'यस सर!' कह कर उसने अपने बैग मे से निकाल कर राजेश को दिया। राजेश ने उसे टैस्ट किया।

'अंकिल चाय' पप्पू ने चाय का कप देते हुए कहा। राजेश का कप टेबिल पर रख दिया। राजेश अचानक हंसा और हंसने का वेग बढ़ता

गया। किसी की समझ में नहीं आया कि किसी के कुछ न कहने पर राजेश जैसे गम्भीर व्यक्ति को एकदम जोर से हंसने को किस वस्तु ने प्रेरित कर दिया। राजेश ने हंसते हुए किचिन में प्रवेश किया।

'राधा तुम नाराज हो' अब तुम्हें नाराज होने की जरूरत नहीं। हमने तुम्हारी बात मानली। हम सदा इसे अपने पास रखेंगे, ठीक है न ?'

'सच' राधा का उदास चेहरा खिल गया।

'हां, राधा यह सदा हमारे पास रहेगा। पेपरवेट बन कर।'

# अस्तित्वहीन–संघर्ष

◘

हुलासचन्द जोशी

मैंने यह सब कुछ शुरू से अन्त तक देखा है।

शुरू से पहले का मैंने कुछ नहीं देखा। सुना जरूर है। सुना हुआ भी देखे हुए से ज्यादा दुखदायी और कष्ट कर है।

दुनिया दौड़ती है। हांफती है।

जो हांफ कर रुक–रुक कर और विश्राम करके आगे बढ़ता है वह रूढ़िवादी है और जो लगातार हांफ रहा है किन्तु रुक नहीं रहा है वह प्रगतिशील है।

इन दो के मध्य भी स्थिति है। जहां व्यक्ति हांफने से पहले ही टूट जाता है, उस दौड़ में लड़खड़ा जाता

है। डूबते व्यक्ति की तरह तिनके का सहारा लेता है किन्तु तिनका टूट कर हाथ में आ जाता है।

यह स्थिति सब के परे की है। भाग्य से—भगवान से।

यह कहानी नहीं उसका अन्त है। ऐसा अन्त जिसका जन्म बार-बार होता है क्रम कब टूटेगा पता नहीं।

न जाने कितने घर उजड़ गये है। इसी क्रम में—

गाँव से कुछ बाहर की तरफ—घास की एक कच्ची झोंपड़ी है। दरवाजा किवाड़ रहित है। चार दीवारों के नाम पर कांटों की बरसों पुरानी बाड़ है जिसमें जगह-जगह अनेकों रास्ते पशु-पक्षियों द्वारा बना लिए गये हैं। बाड़ अब अस्तित्वहीन-सी है और उस घर की सीमा का संकेत मात्र बनकर रह गयी है।

झोंपड़ी के आगे कुछ कच्चा आंगन है। वहीं पर कुछ टूटे-फूटे-बर्तन और कुछ कबाड़-सा पड़ा है। सभी कुछ बरसों पुराने है। जिनमें सही सलामत एक दो है।

उन्हीं के मध्य आधा लुढ़का-सा पानी का एक घड़ा पड़ा है। बस! बाहर का दृश्य कुल—मिला कर यही है।

झोंपड़े के अन्दर क्या है इसका मुझे पता नहीं। बाहर से तो वह खाली-सा ही दिखलाई देता है।

वहीं एक मरियल-सा कुत्ता फिरता रहता है। जो अंधकर बड़ी बर्तनों को सूंघता और चाटता फिरता है। कभी-कभी वहीं पर टांग उठा कर पेशाब करके इधर-उधर देखता दौड़ जाता है।

सब कुछ सूना है। कोई डर नहीं खतरा नहीं।

उस झोंपड़ी में रहती है एक औरत। उम्र पचीस-तीस वर्ष। मैले-कुचैले फटे-चिथड़ों में दबी—ढकी और हमेशा सिर भी झुकाती हुयी।

नाक-नक्श ठीक है किन्तु भयंकर गरीबी ने सब कुछ चौपट कर रखा है। गन्दगी और बदबू से यहां घृणा से भर उठेंगे। साथ ही सारा मन खिन्न से भरकर ऊब उठेगा। यहीं से एक प्रकार वस औंदु गन्ध की लपट उठती है कि ठहरने को जी नहीं चाहेगा।

कभी—कभी उसको इससे भिन्न भी पाया है। उससे मिलने वाले भी उसी तरह के है। किन्तु उनकी हालत इससे काफी अंशों मे अच्छी है।

इसका पति वहीं पत्थर निकाला करता था। वहीं मिट्टी के दब जाने पर मर गया था। अब वह अकेली है।

सभी कहते है बेचारी बहुत तकलीफ और मजबूरी मे है। लेकिन कहने वाले कुछ नही करते हालांकि कर सब कुछ सकते हैं।

सब के रोग एक ही है, 'अपना घर सम्भल जाये तो ही अच्छा है।'

यह एक कहानी है जिसका अपना अस्तित्व है। इस कहानी का प्रतिनिधित्व असहाय-अभावों से ग्रस्त--भूखे माँ—बेटे कर रहे है।

मैंने उस बच्चे को धूल में नग-धड़ग मौज मे या भूख से खेलते या तडफते देखा है। मन पसीजता है, रोता है। दिल में एक तीखा काँटा-सा अटक जाता है। मैं उस स्थान से विवश-सा हट जाता हूँ।

फिर भी स्मृति पीछा नही छोड़ती।

यह बात नहीं है कि वह औरत और बच्चा मुझे जानते हैं। न तो वे मुझे जानते है और न मैं उनको जानता हूँ। बस बात इतनी है कि उसका घर रास्ते मे आ जाता है।

यहाँ प्रकृति से अपने आपको बचाने के लिए संघर्ष चल रहा है। प्रकृति इन्हें निगल जाना चाहती है। ये क्षुद्र प्राणी जैसे—तैसे उससे अपने आपको बचाते चले जा रहे हैं।

एक तरह की आँख-मिचौनी चल रही है।

उस मैली-कुचैली चिथड़ो मे लिपटी औरत के दिल में भी जीवन के प्रति उमंग है। अपने बच्चे के लिए वह भी सुखद भविष्य का एक स्वप्न रखती है। एक लक्ष्य है जिसे वह पाना चाहती है।

शायद उसके पहले के याने उसके पूर्वजो ने भी अपनी सन्तानों के लिए ऐसी ही कल्पना की होगी। किन्तु सब मिट गये। आगे……।'

उस औरत को काम के लिए इधर-उधर भटकते देखा है। काम

करते थी। बहुत-सी बार आमना-सामना भी हुआ है। वह घूंघट की ओट करके रास्ते के किनारे होकर निकल जाती है। उससे कभी कोई बातचीत नहीं हुई। मन तो करता है कुछ बोलूं किन्तु चुप कर जाता हूँ। आज तक यही करता हूँ। उसका मुझ से सम्बन्ध ही क्या है?

यह तो रास्ता है। अनेकों मिलते हैं गुजर जाते हैं। किसके पास बतलाने और समझाने का समय है। सब अपनी-अपनी खींच-खोद रहे हैं। समझाना-बुझाना गया कुएं में। मौका पड़ने पर एक दूसरे को खींच-तान से फायदा उठाने की ताक में सभी रहते हैं।

वह जिस किसी भी तरह अपना पेट पाल रही है। एक-एक करके जीवन के दिनों को गिन कर निकाला जा रहा है। कोई उसका सहायक नहीं। मजबूरी का फायदा उठाने वाले अवश्य चारों ओर मंडरा रहे हैं।

मनुष्य दान अवश्य करता है। वह करता है अपनी वाह-वाही और स्वर्ग की सुखद कल्पना की पूर्ति के लिए। दान भी उनको दिया जाता है जिनसे मौके-बेमौके काम लिया जा सकता है।

हां तो बात सहायता की थी। भगवान भी उससे रूठ गया था। सहायता करना मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है। कुछ एक होते भी हैं तो उनसे विशेष अन्तर नहीं पड़ता है।

भगवान उसकी सहायता अवश्य कर सकता था। जैसा कि वह सभी भक्तों के लिए करता है। सहायता और वह भी भरपूर। उस थोड़े से सहारे से उस एक का ही नहीं अनेकों का पेट भर जाता। कईयों को रोजगार मिल जाता।

उसकी काली-कलूटी देह की जगह गोरे चेहरे पर तीखे कटारी से नयन और फूल की पंखुड़ी से होठ। थोड़ी पतली कमर और उसके साथ ही चाल में थोड़ा-सा ठमका। बस भगवान को इतना ही करना था। शेष कार्य कर लेती या लोग उससे करवा लेते।

वह औरत अपने बच्चे को घुटनों के बीच लिए बैठी पुचकार रही थी। रह—रह कर उसको चूम भी लेती थी। किन्तु बच्चा भूख में

पिल्ले की तरह कू-कू कर रहा था, बिलख रहा था। माँ की ग्राँखों मे वेदना घिर ग्रायी। ग्राँखें सजल हो उठी। प्रत्येक क्षण जहर के काँटे-सा चुभ रहा था।

"कहां जाए ?"

"क्या करें ?"

चार-छः-ग्राने या ग्रनाज-दाल-ग्राटे के लिए वह ग्रपना शरीर प्रस्तुत करने के लिए तैयार थी। शायद काफी दफा ऐसा कर भी चुकी थी।

किन्तु ग्राज !

कोई काम भी नहीं मिला—उधार भी नहीं मिला ग्रौर शरीर लेने वाला भी नहीं मिला।

ग्राज नही काफी दफा ऐसा हो चुका था।

भूख सब से बड़ी है। वह सब कुछ करवाके भी शान्त नहीं होती। मैंने एक उड़ती-सी नजर उस घर पर डाली। उस ग्रौरत नें घूंघट हटा कर ज्योंही ग्रपनी नजर मुझ पर डाली मैं काप-सा गया। मेरी नजर झुक गयी। कदम ग्रपने ग्राप उठ गये ग्रौर मैं वहाँ से तेजी से रवाना हो गया। एक प्रकार के भय ने मुझे जकड लिया।

न जानें उन ग्राखों में क्या था। वे ग्रांखें ग्रब भी मेरा पीछा कर रही थीं। उन ग्राखो मे सारी याचना उभर ग्रायी थी। वे कह रही थी, 'ग्राग्रो मेरे नजदीक ग्राग्रो। मेरी बात सुनो · मेरी भूख से ग्रपनी भूख···। या यों ही दो गरीब ग्रादमियो के लिए कुछ दे दो।'

मैं कुछ देने से पहले ही भाग खड़ा हुग्रा था। ग्रब कुछ रुका। ग्रपने को काफी धिक्कारा। चार-छः-ग्राने फेंक देने से क्या बिगड जाता। किन्तु वहां खड़ा रहना या चार-छः-ग्राने फेंक देना बहुत बड़ा···।' फिर यह कोई एक दिन की बात थोड़े ही थी।

इज्जत ग्रौर मान की कोई निश्चित परिभाषा या नाम नहीं है। लोग वह सब कुछ करते है जो उन्हें नहीं करना चाहिए। फिर भी इज्जत-दार हैं। समाज की सत्ता उनके हाथ मे है। किन्तु मैं···। चार-छः-ग्राने की

दया से कल ही चर्चा का विषय बन जाऊँगा। यार दोस्त भी ताने मारेंगे, 'यार इतने नीचे गिर जाओगे सोचा भी नहीं था। पानी ही पीना था तो उस छोटे से बदबूदार पोखरे का क्यों पिया। कोई बहती नदी में हाथ धोते। मजा आ जाता।'

कर्म एक ही है। यह भी पाप के लिए प्रेरित प्रेरणा है। किन्तु उस पर धर्म का या अन्य जो भी आवरण अच्छा हो का सहारा लेने का अप्रकट इशारा होता है। पाप करो। कोई मनाही नहीं है। किन्तु करो ढंग से।

सब मुझे आदर्शवादी मानते है। इस छाप को मैं कभी उतार कर अलग नहीं रख सका। यहाँ बात केवल कुछ सहायता करने की थी। वह मैं नहीं कर सका।

सड़क पर चलते किसी भी भिखमंगे को या भिखारिन को कुछ दिया जा सकता है किन्तु उस औरत को कभी मैंने किसी के सामने हाथ फैलाते नहीं देखा। कुछ भी प्राप्त होने से पहले वह वापिस कुछ देगी।

शाम धीरे-धीरे अँधेरे में लिपट गयी। आंधी ने धीरे-धीरे उग्र रूप धारण कर लिया। रात अँधेरी, काली, डरावनी लग रही थी। आंधी के तेज थपेड़ों ने सब कुछ हिला कर रख दिया। धीरे-धीरे छींटे पड़ने लगे और फिर तड़ातड़ वर्षा होने लगी। बिजली की कड़-कड़ाहट, आंधी पानी की भयंकर बौछार असहाय-गरीब जीवों पर हँस कर ठहाका लगा रहे थे।

न जाने फिर कितने वृक्ष टूटे-गिरे-पड़े और न जाने कितने झोपड़ों की छतें उड़ गई होंगी।

पानी की बाढ़ों ने उफ़-उफ़ कर कई रास्तों को बन्द कर दिया। जगह-जगह पानी भर गया था। आंधी के झपाटों और वर्षा की बौछार से न तो कुछ साफ़ सुनाई पड़ रहा था और न दिखाई। उनकी सांय-सांय और छप-छप में सब कुछ डूबा हुआ था।

सारी रात गये आंधी-पानी शान्त हुआ। भोर होते वहाँ से बड़े लोग या जाग रहे थे। सब के गड्ढे में बिजली छन भू रही थी। कुछ-कुछ

होकर परिवार सहित झोंपड़े के किसी कोने में दुबके पड़े होंगे। विवशता से एक दूसरे की ओर देख रहे होंगे—'हम भी कैसे प्राणी हैं।'

कल की शाम ने मेरे दिमाग को भारी कर दिया था। ईश्वर भी कैसा अन्यायी है! अपने ही बच्चों को तरसा-तरसा कर मार रहा है। इससे तो कसाई अच्छा है। जो एक झटके में सब कुछ साफ कर देता है। मुझे खीज-सी आई और मुंह में थूक भर आया जिसे मैंने खिड़की से बरसते आंधी पानी की तरफ जोर से फटकार दिया।

नींद नहीं आ रही थी। अपने-आपको समझाया, 'दुनियां यों ही मर खप जाएगी। किस-किस की फिकर करोगे? तुम्हारे फिकर करने से हो भी क्या जाएगा? जब तक लखपति-करोड़पति और सरकार ध्यान नहीं देंगे। कुछ नहीं होगा। और इनके पास कहां इन बेचारों के लिए सोचने समझने का समय है। लाखों-करोड़ों रुपये की योजनाओं से निपटें तब इस तरफ ध्यान दें······।'

मैं उस रास्ते अब कभी नहीं जाऊंगा। मुझे क्या मतलब बेकार की परेशानी में?

सुबह तक आंधी-पानी शान्त हो चुका था। कुछ-कुछ अजीब-सा लग रहा था। लोग रास्ते में पड़ी बाड़ को हटा रहे थे। गरीब लोग अपने घरों से आंधी में पिटे-भीगे पक्षों वाले पक्षी की तरह फड़फड़ा कर निकल रहे थे।

उस ठन्डी हवा में घूमने की इच्छा हुई। दरवाज़े को फटाक से बन्द कर रास्ते के बीच आकर सोचने लगा, 'किधर जाऊं?'

यंत्रवत पैर सदा के रास्ते मुड़ चले। मैं ठिठक कर रुक गया,

'इस रास्ते अब कभी नहीं जाऊंगा।'

काफी देर असमंजस में पड़ा रहा। न इधर बढ़ा न उधर। आखिर निर्णय लिया, 'बस आज-आज इस रास्ते और जाऊंगा। फिर जीवन भर इस तरफ मुंह भी नहीं करूंगा।'

मैं बढ़ चला।

उस घर के पास भीड़ जमा हो रही थी। लोगों की [illegible] गुंथी आवाजें उठ रही थीं—

'क्या हुआ ?'

'अब क्या करना है ?'

वह घर मालती-रानी से दह गया था। मां-बेटा उनके नीचे दब गये थे।

लोगों का विश्वास है कि वे दब कर मरे हैं। किन्तु मैंने देखे देखा। मेरा पक्का विश्वास है कि झोंपड़े की छत में इतना वजन ही नहीं था कि कोई दब कर मर जाए। छत का घास-फूस इस ढंग से गिरे थे कि उनका पूरा बोझ उन पर नहीं था। मां-बेटा निश्चित ही भूख से मरे थे।

—•—

# काला पक्षी

शार्दूलसिंह कविया

फाइल बगल में दबा जब करीम-खा घर से निकला तो बड़ा प्रसन्न था गज़ल गुन गुनाता हुआ मस्त चाल से चला जा रहा था। काली बलखाती सड़क और किनारे के सघन वृक्ष आज उसे अधिक सुहा रहे थे। उसने आकाश में चमचमाते सूर्य की ओर देखा फिर कलाई पर बंधी घड़ी की ओर। आज वह समय पर ही मकान से निकल पड़ा है। करीम के पैर ऑफिस की ओर बढ़ रहे थे पर उसका मन बीवी बच्चों में भटक रहा था।

आज जब वह ऑफिस के लिए तैयार होकर कमरे

में आया तो न जाने क्यों बच्चे को गोद में लिए बीबी सामने आ खड़ी
करीम ने बच्चे का मुँह सहलाया। बच्चे ने ललचाये नेत्रों से उसकी
देखा और हाथ फैला दिये। उसने बच्चे को ले लिया और लगा
चूमने। जब वह बच्चे को खातून की गोद में देने को आगे बढ़ा तो
मुस्कराकर थोड़ी दूर हट गई। उसकी वह स्नेह भरी चितवन करीम
अपनी सड़क पर ठंडक पहुंचा रही थी। ऑफिस में अभी जाकर
करना है। जब सभी देर से आते हैं तो उसे क्या जल्दी लगी है। आ
दिन भर यहां मरना है क्यों न एक घड़ी चैन की सांस ली जाय!
सामने चौराहे पर पीपल की छाया में जा जमा। फाइल को सहेज
अपनी बगल में रख लिया और उस पर जमी रज को साफ करने लग
पिछले तीन मास से यह फाइल उसके मकान पर पड़ी थी। अब
आगया है फाइल में से चांदी बरसेगी। यह लुटेरा बनिया बड़ी मुश्किल
चक्कर में आया है। पूरा पैसा लेकर फाइल दिखाऊंगा। उसने फाइल
ज़ोर से दबाया और पास बैठे चाटवाले से बातें करने लगा। चटपटी चाट
की भीनी गंध से उसके मुख में पानी भर आया। जेब से पचास पै
निकाले और चाट वाले की तरफ फेंक दिये।

हरे पत्ते पर चाट सजाते हुए खोमचे वाले ने छेड़ा, 'बाबूजी
आज तो बड़े जम रहे हो।' करीम यह सुनकर फूल उठा। उस समय वह
अपने आपको किसी वाजिद अली से कम नहीं समझ रहा था। चाट का
पत्ता संभाल कर उसका जायका लेने वाला ही था कि उसके सिर पर
धमाका सा हुआ। उसके सवारे हुए बालों पर किसी ने कठोर पंजे जमा
दिए! नया वाजिदअली सकपकाया। इस घबराहट में चाट का पत्ता
हाथ से फिसलकर नीचे धूल में जा गिरा। उसका हाथ ऊपर उठना था
कि पंख फड़फड़ाता हुआ एक कौआ सिर पर से उड़कर पीपल की टहनी
पर जा बैठा। कौए को देख करीम लज्जित हुआ। खोमचे वाला मुस्कराया।
चबूतरे पर खेल रहे अधनंगे छोकरों ने तालियां बजाई और बेहूदी आवाजें
करने लगे। खोमचेवाले ने खुशामद की, 'बाबूजी खयाल न करें यहां के कौए
ससुरे नकटे हैं, छोटे बड़े का ध्यान ही नहीं रखते। हुकम हो तो चाट
का नया पत्ता बना दूं?' किन्तु करीम ने जैसे सुना ही नहीं। वह सीधा
चल पड़ा।

उसे अपने पर तथा कौए पर समान क्रोध आ रहा था। वह चौराहे पर चाट खाने क्यों बैठा। वह कोई भले आदमियों के बैठने की जगह है। कौआ भी कितना निडर था। खातून देख लेती तो कितनी खिल-खिलाती। अब तक न जाने कितने ताने कसती। करीम ने दबी नजर से चौराहे की ओर देखा, बिखरी चाट पर कौए टूट रहे थे। वह जल्दी-जल्दी ऑफिस की तरफ पैर बढ़ाने लगा। करीम को ऑफिस की याद आई। निरंजन बाबू सामने बैठे काम कर रहे है। निरंजन बाबू की याद आते ही उसका मुंह उतर गया। वे कहा करते है, 'सिर पर कौआ बैठना दुर्भाग्य का सूचक है'। कौआ कलह का निमन्त्रण लेकर आता है। बड़ी बात नहीं इससे मनुष्य की मृत्यु तक हो जाय। उनके एक सम्बन्धी के सिर पर कौआ बैठ गया था, तीसरे ही दिन ऐसा बीमार हुआ कि तीन महिने खाट काटी।

करीम को लगा जैसे वह बड़े अस्पताल में बीमार पड़ा है। सूख कर लकड़ी हो गया है। खातून बगल में बैठी बिलख-बिलख कर रो रही है। दोनों बच्चे रोटी का टुकड़ा मांग रहे हैं। करीम को पसीना आ गया खुदा न करे कहीं कुछ हो जाय तो उसकी बीबी के पास धरा ही क्या है। उसे बीमा विभाग पर विश्वास होने लगा। कौआ सिर पर बैठ जाने पर वही तो एक-मात्र मददगार है।

इन अशुभ कल्पनाओं से उसका जी घुटने लगा। बुद्धि ने समय पर साथ दिया। उसे दिल में कमजोरी नहीं लानी चाहिए। कौए में क्या बुराई है। उसने फाइल को जोर से दबाया। निरंजन बाबू अनुभवी हैं समझदार है पर है पक्के अन्ध विश्वासी। वह ऐसा कायर नहीं जो कौए से डर जाय। इस उधेड़बुन में ऑफिस पहुचते-पहुचते करीम को काफी देर हो गई। वह ऑफिस की सीढ़ियों पर दबे पाव चढ़ा। फाइल को मेजपोश के नीचे दबा, बुशर्ट के बटन खोल पंखे के नीचे जा खड़ा हुआ। इतने में चपरासी लपकता हुआ आया।

'बाबू जी आपको साहब याद करते है।'

करीम ने तिरस्कार की दृष्टि से चपरासी को घूरा और उसी मुद्रा में पंखे के नीचे खड़ा रहा।

बिहारी ने सुन लिया। हंस कर ताना मारा 'कहो मियाँ क्या हो गया बेगम साहिबा को ? कुछ पेट में गड़-बड़ है क्या ?'

'क्या बताऊँ डाक्टर-हकीम सबको दिखला दिया कुछ पता नहीं लगता।

अरे अब हम समझ गये। यहाँ आओ हम बतायें इलाज। और लगा मुस्कराने। यह सब सुन करीम के उदास चेहरे पर मुस्कान की लहर दौड़ गई।

करीम जब घर पहुँचा तो थकान अनुभव कर रहा था। जाते ही चारपाई पर लेट गया।

खातून थोड़ी देर में चाय बना लायी। करीम ने मंद स्वर में कहा, 'पहले एक गिलास पानी लाओ।'

खातून गिलास थमाती हुई बोली, 'क्यों आज आते ही कैसे लेट गये ?'

'तबीयत ठीक नहीं है।'

'क्या हो गया ?'

'सिर दुख रहा है।'

खातून ने हाथ लगाकर देखा।

*'यह क्या हुआ, आपको बुखार मालूम होता है।'*

करीम दूसरे दिन आफिस नहीं जा सका। बुखार बढ़ता ही चला गया। रात भर कराहता रहा। खातून सारी रात चारपाई पकड़े बैठी रही। तीसरे दिन फिर बुखार नहीं उतरा डॉक्टर की दवा ली पर कोई खास असर नहीं हुआ।

करीम निराशा भरे स्वर में बोला, 'यदि बुखार नहीं उतरा तो क्या होगा ?'

खातून ने समझ कर उत्तर दिया, 'बुखार है उतर जायेगा। ऐसा क्यों सोचते हो ? मालिक को याद रखो।'

खातून को तब ख्याल आया कि हो न हो उसके घर में कोई

खराब पैसा आया है। वह आदमखोर बनिया जो पिछले दिनों घर पर आया था बहुत देर तक क्यों बैठा रहा। उसे अन्दर के कमरे में ले जाकर क्यों बैठाया ? दाल में काला है। जरूर कुछ देकर गया है।

खातून अचानक खड़ी हुई, कुछ सोचा और भीतर के कमरे में गई। उसने मेज की दराज खोल कर देखी। एक कागज में लिपटे हुए दस-दस के दो नोट रखे थे। उसने नोट अपनी मुट्ठी में दबाये और तुरन्त घर से बाहर निकल पड़ी। वह सीधी पास के यतीमखाने में गई। नोटों को खैरात के डिब्बे में डालकर लौट आई।

करीम का बुखार उसी रात पसीना आकर उतर गया।

# एक और पागल

◻

अफ़ज़ल

सलमा की क़ब्र पर निगाह जाते ही क़ादिर कुछ चौर-सा गया। होंठ दुआ के लिए तेज़ रफ़्तार से फड़फड़ा रहे थे। हाथ दुआ में ऊपर उठे थे। पर दिमाग़ छः रोज़ पहले दफ़नाई गई सलमा की क़ब्र पर पड़ी ताज़ा और गीली मिट्टी के बारे में सोच रहा था। उसे ख्याल आया—कहीं क़ब्र में किसी जानवर ने मुर्दा तो नहीं निकाल लिया या फिर कोई जानवर तो क़ब्र में नहीं घुस पड़ा। इन्हीं ख्यालों के बीच दुआ पूरी हो गई, और क़ादिर की निगाहें सलमा की क़ब्र के चारों ओर दौड़ गईं। पर कोई ऐसा सुराग़ हाथ नहीं आया, जिससे

इस बात का एहसास हो कि कब्र से मुर्दा निकाला गया है, या को
जानवर कब्र में दाखिल हो गया है। फिर ख्याल आया—शायद सलमा के
अब्बा रमजानी मियां ने कब्र को ठंडा करने के लिये एक दो बाल्टी पानी
डाला हो। पर ख्याल आते ही एक झटका-सा लगा कादिर के दिमाग
को-अनायास उसके होठ बड़-बड़ाने लगे। उस पगले को इतना होश कहा
कि वह अपनी बेटी की कब्र पर आ कर दुआ पढ़े या कब्र को ठंडा करे।
रमजानी मिया को तो इतना भी होश नहीं था, कि अपनी बेटी की मय्यत
में आये, उसे अपने हाथों से दफनाएं, मिट्टी दें। उल्टे उस दिन पूरे मोहल्ले
में घूमते रहे, हँसते रहे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। कादिर एक ठंडी
सांस छोड़कर कब्रिस्तान से चल पड़ा।

रमजानी मिया कभी किसी से बात नहीं किया करते। अपने
मकान से रोज सुबह चवन्नी लेकर आते और पास ही पान की दुकान से
एक बंडल बीड़ी ले वापस घर लौट जाया करते। यही करीब दो तीन
सालो से उनका रोज का ढर्रा था। लोग कहते है रमजानी मिया कभी
बहुत पैसे वाले थे। हजारों का कारोबार था। खैरात और जकात के
मामले मे भी पूरे शहर मे वे एक ही थे। अपनी जवानी के दिनो में
रमजानी मियां शाहजहा के नाम से मशहूर थे। क्योंकि वे अपनी बेगम
मरियम को बेहद प्यार करते थे। पर अपनी पहली औलाद सलमा के पैदा
होने के कुछ दिन बाद ही अपनी प्यारी बेगम मरियम के मर जाने का
सदमा उन्हे इस कदर लगा कि वे न तो घर से निकलते, न ही किसी से
बोलते।

सलमा ने बचपन से मा का प्यार नहीं देखा पर उसके अब्बा-जान
दिन-रात उसकी देख-भाल करते। सलमा की मां के मर जाने के बाद
रमजानी मिया कभी चैन से नहीं सोये। वे हरवक्त सलमा को अपनी छाती
से चिपटाये अपनी बेगम की तस्वीर के सामने आंसू बहाते रहते। इस तरह
उनका जमा-जमाया सारा कारोबार बर्बाद हो गया। पास बची जमा
रकम भी धीरे-धीरे खत्म होती रही।

इसी तरह बारह-तेरह साल गुजर गये। सलमा अब कुछ-कुछ
जवान-सी दीखने लगी। पर इसी बीच रमजानी मियां की हालत बहुत
बिगड़ गई। एक तरह से वह बिल्कुल पागल हो गये। कभी हंसते तो

अपनी बेगम का नाम लेकर हंसते ही रहते। सलमा को अपने अब्बा-जान की यह हालत देख कर बहुत गम होता। पर अब धीरे-धीरे सलमा भी इसे रोजमर्राह की बात समझ कर ज्यादा ध्यान नहीं देती। फिर भी वह अपने अब्बा-जान का बहुत ख्याल रखती। उन्हें रोजाना नहलाती। उन्हें धुले और साफ कपड़े पहनाती। खाना बना उन्हें जिद करके खिलाती, और भी हर तरह से उनका ख्याल रखती।

शहर के ही वनस्पति तेल बनाने के कारखाने में सलमा ने नौकरी कर ली जिसमें पचास रुपया माहवार मिलता। उसी से उसके और उसके अब्बा-जान का गुजारा चलता। करना रमजानी मियां तो बिल्कुल पागल हो चुके थे। पागलों की तरह अपनी बेटी को देखते रहते और रोते रहते, हंसते रहते। सलमा पर अब लोगों की नजरें उठने लगी थीं। कारखाने में काम पर जाते हुए या आते हुए उसे घूर-घूर कर देखते तो सलमा मन ही मन अपने से पूछती, 'आखिर मुझ में क्या तब्दीली आ गई है कि लोग आंखें फाड़-फाड़ कर, खा जाने वाली नजरों से मुझे देख रहे हैं।' अनायास ही उसकी नजर अपने सीने के उभार की दरार को पार करती हुई जमीन पर झुक जाती।

हमीद रोज पानी के नल के पास सुबह-ही-सुबह खड़ा हो जाता। बार-बार उसकी नजर उस गली की ओर उठ जाती जिस गली से सर पर घड़ा रखे सलमा नल पर पानी लेने आया करती। हमीद की उम्र यही कोई पन्द्रह सोलह साल की होगी। उसके वालिद को यहां तबादले पर आये करीब एक डेढ़ महीना होने को आया था। तब से रोज हमीद सलमा को नल पर पानी भरते, घड़ा सर पर रखते, और गली में निकलते, गली में जाते देखता रहता। उसके मन में सलमा के सामने जाने और उससे बात करने का ख्याल बहुत बार आया, पर बात करने की हिम्मत छोड़ सलमा से खुद नजर मिलाने में भी डर महसूस करता। यही वजह थी कि हमीद ने सलमा को दूर से देखा था, पर पास से सलमा कैसी दिखती है, इस बात का एहसास उसे आज तक नहीं हुआ। इसी बीच हमीद के वालिद हमीद को लेकर किसी काम से शहर के बाहर चले गये। हमीद जाते हुए रास्ते में सोचने लगा—'सलमा का चेहरा कितना हसीन है। उसकी आंखें कितनी

अच्छी है, कितनी अच्छी है सलमा ! काश अब्बा सलमा को अपने घर
और उसे मैं देखता रहूं । बस देखता रहूं । अचानक उदास हो गया
का मन । पर सलमा तो मुझे जानती तक नही, क्या उसने मुझे देखा
या नहीं । मैं कितना डरपोक हूं मैंने उससे कभी बात तक नही की, उस
भी नही गया । न उसका अता-पता ही मालूम किया, मालूम हो सक
एक नाम ? और न जाने क्या-क्या मनसूबे बांधता रहता हूं, और हमीद ने
मे पक्का अहद कर लिया कि शहर से लौटते ही वह सलमा से जरूर
करेगा । उसके घर जायेगा ।

सलमा ने ज्योंही अपना काम खत्म किया कि कारखाने के मैनेज
ने कहा, सलमा सबको जाने दो, तुम रुक जाना । तनख्वाह लेकर जाना
वह अधखिली कली, मासूम सलमा दस-दस के पाच के चक्कर मे रुक गई ।
अचानक, कुछ देर बाद, सलमा कुछ बोले, कुछ समझे इससे पहले ही दरवाजे
के बन्द होने की आवाज आई वह हटा तो देखा कि सलमा के शरीर मे
अब कोई हरकत ही नही थी । वह सकते की हालत मे आ गया । उसने
आव देखा न ताव सलमा को ठीक-ठाक किया । दस-दस के पांच नोट
उसके हाथ मे रखे और पास रखी अलमारी को बड़े जोरो से सलमा के
ऊपर उलट दिया । एक जोरदार धमाका हुआ और गेट पर खड़ा चौकीदार
दौड़ा आया । मैनेजर ने हांफते हुए कहा, 'गोरखा' अलमारी उठाओ,
शायद बच्ची नीचे दब गई है ।' अलमारी के उठाने पर सर, पावों व हाथो
से बहते खून से सनी सलमा की लाश देख मैनेजर बोला, 'बेचारी तनख्वाह
लेकर अभी-अभी मेरे ऑफिस से निकली थी । यह अलमारी कैसे गिर पड़ी
इस पर ? पास ही के थाने के इन्चार्ज अपने दोस्त थानेदार को, व साथ
खाने पीने वाले डाक्टर को फोन कर दिया मैनेजर ने

पुलिस व डाक्टर की दोस्ताना जांच के मुताबिक अचानक अल-
मारी के नीचे दब कर मरने वाली सलमा को पास पड़ौसियों ने कब्र मे
दफ़न कर दिया । रमजानी मियां सलमा के जनाज़े को ले जाती भीड़ को
हंस-हंस कर विदा दे रहे थे और हंसे जा रहे थे , जैसे कोई खजाना हाथ
लग गया हो । इधर लोग तरस खा रहे थे उनके पागलपन पर ।

सात दिन बाद हमीद अपने घर लौट आया । सुबह उठते ही वह

नल पर जा पहुंचा। करीब एक घण्टे तक उसकी निगाहें सलमा की गली पर लगी रहीं। पर सलमा नहीं आई। वह उदास हो गया, उसने बाजार का एक चक्कर लगाया पर उसे सलमा कहीं भी दिखाई नहीं दी। उस रोज हमीद को कुछ भी अच्छा नहीं लगा। उसने खाना भी नहीं खाया और रात भर सलमा को देखने की हसरत लिए सोता रहा, जगता रहा सुबह उठ कर वह फिर उस नल के पास चला गया। पर सलमा नहीं आई, और वह हिम्मत करके सलमा के मकान वाली गली में घुस पड़ा। एक बच्चे से पूछने पर सलमा का मकान मालूम हो गया। एक जोरदार धक्का दरवाजे को दिया और वह 'सलमा-सलमा' कहते हुए घर में घुस पड़ा।

एक तेज सड़ी हुई सी बदबू उसके नथुनों से आ टकराई और हमीद ने हाथ से अपनी नाक दबा ली। पागल की तरह एक बुड्ढे को सामने पा हमीद घबरा-सा गया। उसने नाक को दबाये हुए ही कहा, क्या यह सलमा का ही मकान है? मुझे सलमा को देखना है, बुड्ढे ने हाथ के इशारे से बता दिया कि पलंग पर सो रही है। हमीद दौड़ पड़ा पलंग की ओर। सामने देखते ही हमीद का सर चकरा गया। कफन में लिपटी हुई सलमा की सड़ी हुई लाश पड़ी थी। दांत बाहर आ गये थे आंखें अन्दर धस गई थी और सलमा का चेहरा निचोड़े गन्ने की तरह सूख गया था। हमीद के दिमाग की सारी नसें तन गई, सर पर हथौड़े की चोटें दना-दन वार करने लगीं और—'नहीं ''नहीं'''कहता हुआ कमरे से भाग गया। कमरे में रह गई एक तेज गन्दी बू जो पूरे कमरे में सड़न पैदा कर रही थी। पर रमजानी मियां अब भी उसी मुस्कान के साथ अपनी बेटी के मुर्दा शरीर के पास बैठे थे।

इतने में कादिर और कुछ पड़ोसियों के साथ पुलिस कमरे में आ घुसी, उन सबके नाक पर रुमाल ढके थे। पुलिस ने आते ही रमजान मियां को कब्रिस्तान से मुर्दा चुराने और पड़ौस में गन्दगी फैलाने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया।

रमजानी मियां पागल-खाने भेज दिये गये। लाश को दुबारा दफना दिया गया। पर मोहल्ले वाले अब भी देखते हैं मोहल्ले में "एक और पागल" जो पानी के पास बैठा-बैठा रोता रहता है, और न जाने किसकी राह देखता रहता है।

# अचीन्हे

## कमर मेवाड़ी

बस स्टॉप पर उतरते ही पूछा था लाल कोठी के लिये। पूरा पता दरियाफ्त कर लेने के बाद वह वहां से चल पड़ा था और अब लाल कोठी को सामने पाकर थोड़ा हिचकिचा उठा है। न जाने अन्दर कौन-कौन लोग हों और वे क्या समझ बैठें। पर अपने में थोड़ा साहस बटोर कर हाथ में सूटकेस को मजबूती से पकड़ कर वह अन्दर दाखिल हो जाता है।

फाटक को पार कर सीढ़ियां चढ़ता हुआ सीधा एक कमरे में पहुंच जाता है। लोहे के पलंग पर एक मोटा गद्दा, साफ-सुथरी धुली चादर, खूबसूरत तकिया, सफेद

कपड़ों से ढका जिस्म, दूध धुले सफ़ेद बाल और झुर्रियों में से झांकता एक प्यारा सा क्लीन शेव्ड चेहरा।

वह बीस साल बाद अब्बा को देख रहा है। उसे देखते ही उनके चेहरे पर खुशी के गुलाब खिल जाते हैं। वे उठने की कोशिश करते है पर उठने में असमर्थ है। वह सारी स्थिति को समझ कर उनके नजदीक पहुंच जाता है, फिर से उन्हें बिस्तर पर लिटा देता है और श्रद्धा से उनके दोनों हाथ चूम लेता है। उसके ऐसा करने पर वे आंसुओं की बाढ़ को आंखों में रोक नहीं पाते। उनका सारा चेहरा आंसुओं से भीग जाता है। वह अपना चेहरा दूसरी ओर कर लेता है। लकड़ी की एक कुर्सी खींच कर उस पर बैठ जाता है। और बात का रुख बदलने के लिए पूछ बैठता है—

'अब आपकी तबियत कैसी है?'

'अच्छा हूं,' वे तपाक से जवाब देते हैं।

वह जानता है वे अच्छे नहीं हैं। अगर वे अच्छे होते तो उसे यहां आने की जरूरत ही क्या थी? वह विचारों के ताने-बाने जोड़ने में लगा रहता है। कमरे में सन्नाटा व्याप जाता है।

लगता है उसके आने के वक्त कमरे में जो एक प्रकार की खुशबू फैली हुई थी उसकी जगह उदासी और मनहूसियत ने ले ली है।

अब्बा शायद यह सब भांप जाते हैं और कमरे की घुटन से उबरने के लिए दीवाल घड़ी की ओर देखने लगते हैं। फिर कुछ सोच कर कहते हैं—

'जावेद देखो, एक हो गये, न्यूज आ रही होगी।

वह रेडियो ऑन कर देता है।

रेडियो जो हमेशा मुल्क की खुशहाली और तरक्की के गीत गाता है आज आग उगल रहा है। अहमदाबाद में दंगा हो गया है। वहां किसी एक तबके के लोगों ने दूसरे तबके के लोगों के इबादतगाह में तोड़-फोड़ की है और दंगा भड़क उठा है। दंगे की आग में क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी आग की भेंट चढ़ रहे हैं।

वह सोचता है ऐसा क्यों हो रहा है। ऐसा क्यों होता है? एक ही मुल्क में रहने वाले लोग जो आपस में भाई-भाई हैं अलग-अलग मजहब को मानते हुए भी जिनकी रगों में एक ही तरह का खून बहता है, एक दूसरे के दुश्मन बन कर अपने ही खून के प्यासे हो गये हैं। सोचते-सोचते उसकी निगाहें अब्बा की ओर उठ जाती हैं। उसे लगता है अब्बा की आंखों से फिर कोई सैलाब उमड़ने वाला है। उसे पिछले साल की वह बात याद हो जाती है जब रांची में ऐसा ही एक दंगा हुआ था और अम्मी उसमें हलाल हो गई थी। इस बात के याद आते ही उसकी आखों से आंसुओं की कुछ बूंदें टपक पड़ती हैं? वह रेडियो को एक झटके के साथ आॅफ कर देता है।

उसकी निगाहें दीवार पर टंगी एक तस्वीर पर अटक जाती हैं, जिसमे अब्बा और अम्मी अपने रांची वाले मकान के दालान में कुर्सियों पर बैठे चाय पी रहे हैं और सामने मेज़ पर एक खूबसूरत टी-सेट रखा है। इस मकान के साथ उसकी भी कई यादें जुड़ी हैं। उसने अपनी जिन्दगी की बीस बेहतरीन बहारें यहां गुजारी थी। पर अब ये सब अतीत की बातें हैं जिन्हें याद करने से सुख नहीं मिलता सिर्फ कलेजे पर चोट पहुंचती है। उन दिनों जब उसे अम्मी के हलाक होने का तार मिला था तब वह बहुत रोया था। उसे इस बात का भी बड़ा सदमा रहा कि वह घर से इतना दूर होने की वजह से अम्मी के आखरी दीदार भी नहीं कर सका। उस वक्त उसे अपने मुल्क के उन तमाम मतलबी लीडरों पर भी बड़ा गुस्सा आया था जो मुल्क की अनपढ़ और मूर्ख जनता को भड़का कर दंगे करवाते हैं।

वह सोचता है उसका बस चले तो वह ऐसे लोगों को जो मुल्क को नेस्त नाबूद करने पर तुले हुए हैं एक लाइन मे खड़ा करके गोली मार दे। पर वह जानता है वह ऐसा नहीं कर सकता।

सुबह जब वह उठा तो धूप के चकत्ते कमरे मे बिछे हुए थे और ठंडी ठंडी हवा खिड़की के रास्ते कमरे में आ रही थी। उसे अब्बा के कमरे से किसी औरत के बात-चीत करने की आवाज कान में पड़ी। वह नाइट सूट पहने हुए ही अब्बा के कमरे में जा धमकता है। वह देखता है अब्बा तकिये का सहारा लिए बैठे हैं। और सामने गेहुंए रंग की अच्छे नाक-नक्शे वाली एक अधेड़ औरत कुर्सी पर बैठे हुए उनसे बातें करने में तल्लीन है।

वह क्षण भर में ही सारी स्थिति समझ जाता है। उसे कमरे में आया देख अब्बा बोल उठते हैं, आओ जावेद, इनसे मिलो ये मीना देवी है। तुम्हारी अम्मी के इन्तेकाल के बाद ये ही मेरी देख-भाल कर रही है। यह मकान इन्ही का है। अब्बा ने ज्यों–ही बात खत्म की मैंने झुक कर उन्हें सलाम किया तो आशीर्वादी मुद्रा मे बोलीं–'जीते रहो बेटा'।

फिर कुछ क्षण मौन छाया रहा।

अब्बा की दवा का वक्त हो चुका था। उसने अब्बा को दवा पिलायी और बाहर निकल ने को मुड़ा कि वे बोल उठी–'जावेद कहा चल दिये ?

'जी मैं ज़रा नहा लू। फिर तैयारी भी करनी है'।

कहा की तैयारी ? उन्होंने पूछा।

'आज शाम के प्लेन से जाना चाहूंगा'।

इतनी जल्दी ? बीस साल बाद अपने अब्बा से मिले हो। क्या इनके साथ कुछ दिन गुजारने को जी नही चाहता है ?'

'जी तो बहुत चाहता है, पर मजबूरी है।

'ऐसी क्या मजबूरी है' ?'

'मुझे कल ही जोइन करना है'।

'लीव सेंक्शन करवायी जा सकती है।

'यह नामुमकिन है।'

'फिर मुमकिन क्या है ?'

'मेरा जाना'।

'अगर आज तुम्हारी अम्मी होती तो क्या तुम इस तरह चले जाते ?'

वह चुप हो जाता है।

उसके पास इनके इस सवाल का कोई जवाब नहीं है।

अब्बा चुप हैं और लगातार शून्य मे घूरे चले जा रहे हैं। उनके

चेहरे पर उदासी और बेचारगी के चिन्ह झलक आये हैं। वह इस सारी बात-चीत से अपने को अब तक असम्पृक्त रखे हुए हैं।

*वह वहाँ से चुप चाप खिसक जाता है?*

बाथरूम से निकल कर वह कपड़े पहनता है और एक-एक कर सारा सामान सूटकेस में जमाने लगता है। फिर खाने की मेज पर जा पहुंचता है। अब्बा, जो पहले से ही गंभीर बने बैठे थे अपने चहरे पर एक झूठी मुस्कान बिखेर देते हैं। खाने के समय कोई कुछ नहीं बोलता। अब्बा और मीनादेवी अपने अपने गमग़ीन चेहरे लिये किसी सोच के समन्दर मे डुबकियां लगा रहे हैं। उसे लगता है वे दोनों सिर्फ उसका साथ दे रहे हैं, कुछ खा पी नहीं रहे। इस अहसास के जगते ही उसका भी जी खाने से उचट जाता है और वह वहाँ से उठ खड़ा होता है।

वाशबेसिन पर हाथ-मुँह साफ कर लेने के बाद वह अपने कमरे मे जाकर पलग पर बिछ जाता है। कई प्रकार के विचार मस्तिष्क मे *उथल-पुथल मचाते है पर दिशा नहीं मिलती। उसे सिर्फ काले-पीले दायरे* दिखायी देते हैं। उसे महसूस होता है वह इन दायरो के बीच फंस गया है *और इनसे बाहर निकलने का कोई रास्ता दिखायी नहीं देता।*

अनायास टैक्सी के होर्न की आवाज सुन कर उसके विचार तनु ट जाते हैं और सूटकेश के हैंडिल को उसकी हथेली मजबूती से अकड़ ती है?

वह अब्बा के सामने खड़ा है और उनसे अन्तिम विदा ले रहा है। ह देख रहा है अब्बा उससे आँखे मिलाने से भी कतरा रहे हैं। उनके हरे पर विवशता और इकलौते बेटे के खो जाने के भाव स्पष्ट रूप अंकित है। वे कुछ नही बोलते सिर्फ उनका दाया हाथ ऊपर उठ ाता है और वह इसी को अलविदा समझ कर बाहर की ओर मुड़ता है क मीनादेवी उसके पावों के पास जमीन पर गिर पड़ती है। वह हतप्रभ उनकी ओर एक-टक देखता रह जाता है। उनकी आँखों में आँसुओं का लाव उमड़ आया है। वे कुछ बोलना चाह रही हैं पर उनका गला रुंध ा है। फिर भी वे अटक-अटक कर सिसकियों के बीच जो कुछ बोलती उसमे से वह केवल इतना ही सुन पाता है– 'जावेद बेटा मुझ से कोई

गुनाह हो गया हो तो उसे माफ कर देना' उसकी स्थिति बड़ी विचित्र हो गयी है। उसे स्वप्न में भी इस बात की उम्मीद नहीं थी कि आने के वक्त उसे इतना दयनीय होना पड़ेगा। उसकी अपनी आँखों में भी आँसू तैर आये हैं पर किसी न किसी तरह वह उन्हें रोक रहा। उसने मीनादेवी को जमीन से उठाया और अपनी उंगलियों से उनके आँसू पोंछ डाले। फिर बारी-बारी से श्रद्धा के साथ दोनों के कदमों में झुक गया और कमरे से बाहर चला आया। टैक्सी से उतर कर जब वह प्लेन पर सवार हुआ तो वह हल्का हो चुका था। उसे इस बात की खुशी थी कि उसके अब्बा और अम्मी दोनों ज़िन्दा हैं और वह उनसे मिल कर अपने नियुक्ति स्थान पर जा रहा है। प्लेन में बैठे-बैठे ही उसने प्लान बनाया कि अबकी बार जब दिवाली की छुट्टियां होंगी तब वह उन लोगों के पास अधिक दिन रुकेगा। उसने सूट केस खोला। उसमें से नये साल की डायरी निकाली और गिनने लगा कि दिवाली की छुट्टियों में अब कितने दिन बाकी हैं।

# उसके लिए

दिनेश विजयवर्गीय

सेकिण्ड सो छूटे पूरा एक घंटा बीत गया। एक बज रहा है। पर बारिश अभी तक ठहर नहीं रही है। निर्णय नहीं कर पा रहा हूं कि क्या इस बारिश में भीगता हुआ ही घर जाऊं? या कुछ और ठहरूं। लेकिन कब तक ठहरा जाय? आखिर मैं इस 'और' ठहरने से झुंझला गया हूं। घर पर मनीषा जगी पड़ी होगी। निश्चय ही वह एक घंटे से अधिक का इन्तजार कर चुकी होगी। रात में जब वह अकेली रहती है तो डरती है और किसी भी संभावित डर से डरने लगती है। डरना उसकी एक हठीली आदत बन

गया है। विक्की सोगई होगी। दिन में सोती भी कहां है। घर में और बच्चों के साथ खेलने में लगी रहती है। आठ बजे के आसपास कहेगी-'मम्मी, हमको नींद आरही है।' और बिना दूध पिये ही पलंग पर अपनी छोटी-सी गुड़िया को लेकर सो जाएगी।

कुछ ही लोग बरसात के ठहरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बाकी सब अपने-अपने छाते तान कर चले गये हैं। प्रतीक्षा करने वालों ने एक गहरी चुप्पी साधी हुई है। लेकिन मैं खीज रहा हूं। जब घर से चला था तब बारिश के कोई आसार नहीं थे। पर बारिश ही तो ठहरी।

'चलो थमने दे'। मेरे भीतर बैठी मनीषा की चिंता मुझे धकेलने लगी है। और मैं बरसने में ही छपाक-छप चलने लगता हूं।

दरवाजा बंद है। आवाज लगाता हूं। पर मनीषा को नहीं, विक्की को लगाता हूं। यह जानते हुए भी कि विक्की तीन साल की बच्ची है, इस समय गहरी नींद में सोयी होगी। पर फिर भी इस मोहल्ले में रहने की यही मजबूरी है। एक बार पत्नी को उसके नाम से पुकारा था। तो दूसरे रोज ही मोहल्ले की पुरानी और संकुचित विचार धाराओं को पाले रखने वाली औरतों ने व्यंग कसे थे-'अब तो आदमी सीधा ही औरत को पुकारने लगता है।' इनमें कोई पूछे-जिनके घर में पति-पत्नी ही हों वे किसको आवाज देते बैठेंगे? खैर मैं तो वहां की परम्परा को निभाते हुए ही विक्की को पुकार रहा हूं। विक्की ओ विक्की। कई बार पुकार चुका हूं। लेकिन कोई 'सिगनल' अभी तक ऐसा नहीं हुआ जिसे पाकर मैं राहत पा सकूं।

मैं पानी से तर हो गया हूं और कांपने लगा हूं। चाह रहा हूं सारे कपड़ों को उतार लूं।

'विक्की मैं चीखता हूं। पर अब अधिक देर तक आवाज नहीं दे सकता डर लगता है, कहीं मोहल्ले वालों की या मकान के पड़ोसियों की नींद 'डिस्टर्ब' नहीं हो जाए। नहीं तो वे अलग से सुनाने की स्थिति में हो जाएंगे।

घर के पिछवाड़े जाता हूं। ऊपर अपने कमरे की खिड़की को देखता हूं। उसके दोनों पल्ले खुले हैं। आश्चर्य होता है। लाइट जल रही

है। यानी जरूर उपन्यास पढ़ती हुई सो गई होगी। इस प्रकार से अलसाते हुए सो जाना अब उसकी आदत होने लगी है। एक बार मैंने पूछा, 'मई ये क्या? इतना जल्दी सो जाती हो।' तो उसने छूटते ही कहा था, दिन भर काम में थक नहीं जाती हूं। और मैं सिर पिटाते हुए चुप्पा हो गया था।

शाम से ही साठ वाट का बल्ब जल रहा है। और अभी डेढ़ बज रहा है। शाम से अभी तक कितना फालतू खर्चा हो गया होगा। पर यह तो मैं ही क्यों सोचूं। मनीषा की भी तो जिम्मेदारी है कि वह देखकर चले।

हताश होकर वापिस सामने की ओर आ जाता हूं। अब व्यर्थ है आवाज लगाना, मैं दीवार के सहारे छज्जे के नीचे हो गया हूं। और ठंड से बचने के लिए उकडू बैठ गया हू। अब बारिश थम गई है। पर कंप-कपी का सिलसिला टूटा नहीं है।

लाइटर निकाल कर बड़ी मुश्किल से सीली हुई सिगरेट को जला पाता हू। और तीन-चार गहरे तक आनन्द पहुचाने वाले कश खेच लेता हूं। सोचता हूं इससे कुछ टाइम पास तो होगा ही और कुछ-कुछ गर्मी भी शरीर में आने लगेगी।

अब तक दो सिगरेटें एक के बाद दूसरी फूंक गया हूं। पर 'और' आवाज देने की बात के बारे मे कुछ नहीं सोच पाया हूं।

मनीषा न जगे न सही। नीचे वाली अम्माजी को आवाज दे ता हू। यही ठीक रहेगा। मकान मे हम तीन किरायेदार हैं। नीचे जाबी रहते है जिनमे एक अधेड़ महिला ही सब कुछ है। अत: सुविधा के लिए हम उन्हे अम्माजी कहते है। और ऊपर हमारे सामने मि. अग्रवाल हब का परिवार रहता है।

पर अम्माजी को आवाज देने मे एक चक्कर है। आवाज दूं और ा भी जाएं तो भी खोलेंगी नही। बल्कि यह और सुनने को मिल एगा–'बुलालो, अपनी बीबी को।' क्योंकि ऐसा घट चुका है। एक बार टा भाई थोड़ी रात गये बाहर से आया था, तो भूल से इन्हीं अम्माजी

को आवाज लगाई थी। और तब भी अम्माजी ने–'क्या मुसीबत है। नीचे रहना क्या हो गया–सोने तक नहीं देते।' फुस-फुसाते हुए फिर से सोने का प्रयास करने लगी थी। और फिर भाई के लिए दरवाजा मनीषा ने ही काफी देर तक आवाजें देते रहने के बाद खोला था और यदि अम्माजी मुझ पर कृपा कर, बिना कुछ बुरा-भला कहे दरवाजा खोल भी दें? तो भी एक समस्या आ खडी होगी। 'मनीषा का गुस्सा'। जैसे ही उसे मालूम होगा कि दरवाजा अम्मा जी ने ही खोला था तो वह भुन-भुनाने लगेगी। दो-तीन महीनों से ऐसा ही चल रहा है।

एक बार अम्माजी ने मुझसे ही मनीषा की शिकायत की थी। 'भई आज कल तो वह ऊपर से नीचे ही नही उतरती। न कभी बोलती है और न बोलने की कोशिश ही करती है। हम पिछले दिनों बीमार हुए तब 'तबियत कैसी है' पूछने तक को नही आई। इन्सान का काम रास्ते की *मिट्टी से भी पड़ सकता है। वे मुझे आडे हाथों लेकर व्यग्य कस रही थीं।*

तब बात समझ मे आगई थी कि अम्माजी आजकल कटी-कटी सी रहने लगी थी। शायद इसलिये कभी दरवाजा खोलने के समय, कुछ सुनने को मिल जाता है।

अम्माजी बडी है, इसलिये कुछ उनकी बात रखने का प्रयत्न करता हूँ। मैंने मनीषा से पूछा था–'क्यों मनीषा अम्माजी तुम्हारे बारे मे शिकायत कर रही थी।

'हाँ, हाँ'। कर क्यों नही रही होगी शिकायत। जगत भी करे तो क्या है?' वह मुझ पर चढ़ने लगी थी।

'नही मनीषा। तुम्हे बात को ठीक से समझना चाहिये। हम सब किरायेदार आपस मे अच्छे पडौसी बनकर रहे। आखिर अच्छे बुरे समय पर ये ही लोग काम आते हैं।

'बुरे दिन आये दुश्मनों के।' वह लगभग रूआँसी होती हुई बोली। *मुझे लगा यदि अब मैं एक शब्द भी उसकी अहमवाली प्रतिष्ठा के खिलाफ* बोलूँगा तो वह बिफर पडेगी।

उसे इस बिफरन से बचाने के लिये मैंने दूसरी बात छेड़ दी। पर

यह कुछ ही देर में अपने को संभालती हुई बोली, 'सब गलत बातें हैं।' आपकी कमजोरी है। क्यों नहीं सुना देते उन लोगों को। उसके चेहरे पर कमजोर पति से पाला पड़ जाने वाले भाव तैरने लगे थे।

'वे बड़े हैं।' कुछ तो रेस्पेक्ट करना ही चाहिये न। मैंने कहा

"पर मैं तो अम्माजी से बोलती हूँ। वे ही कभी जब सामने पड़ती है तब अपने को छुपाने की कोशिश करती हैं। कुछ ठहर कर वह फिर बोली—यह सब काम मिसेज अग्रवाल के हैं। उन्होंने ही इन्हें मेरे विरुद्ध किया है।' वह अपोलो स्पीड सी कह गयी।

बात से मालूम हो गया कि मनीषा जहां अम्माजी से व्यवहार में दूर होती गई वहीं साथ ही साथ मिसेज अग्रवाल से भी कटती गई।

'फिर भी कुछ स्तर तक संबंध ठीक रखना ही चाहिये।' मैंने फिर एक सिगरेट सुलगाई। और दरवाजे के खुल जाने की नयी संभावना का पता लगाने लगा। अग्रवाल साहब को आवाज दी जाय। शायद किसी की नींद उचट जाय। मिसेज अग्रवाल हैं। उनके दो बच्चे हैं। एक विक्की जैसी उम्र की बच्ची है। कोई भी आवाज सुन सकता है।

लेकिन अग्रवाल साहब की फेमिली में से भी किसी को आवाज नहीं दे पाता हूँ। यहाँ भी वही अम्माजी जैसी बात है। यदि मैं इन लोगों को पुकारूं तो तो अवश्य ही मिसेस या मिस्टर अग्रवाल दोनों में से कोई भी आवाज सुनकर दरवाजा खोल देंगे। पर मैं इस प्रकार दरवाजा खुलजाने की संभावना खोज निकालने पर भी सरकारी सिस्म की चुप्पी साध लेता हूँ।

मुझे सिगरेट की झड़ती हुई राख में मनीषा का गिरता हुआ व्यवहार याद आने लगता है। आखिर इतना अधिक 'संकुचित कैसे हो गई।' वाकई कुछ महीनों पहले वह बड़ी खुश दिखलाई देती थी। और पड़ौस म भी सबसे ही ठीक बोलचाल थी। पर अब वह गंभीर रहने लगी है। और बोझिल होकर कुछ न कुछ कहने वाली स्थिति में घुटती जा रही है।

मैं एक बार फिर इसी उधेड़-बुन में फंसता हुआ खिड़की की का जायजा लेने चला गया। लाइट अब भी जली हुई थी। पर खिड़की का एक पल्ला बंद हो गया था। शायद हवा से बंद हुआ हो। एक

बार फिर तीन-चार आवाजें दी है। पर सब कुछ व्यर्थ रहा।

फिर लौट आया हूँ। सडक एकदम सुनसान है। इस समय दो बज रहे हैं। और दो बजे वाली नीद तग कर रही है।

मिसेज अग्रवाल से पता नही मनीषा का किस बात पर झगडा हो गया। मनीषा झगडे वाले दिन बता रही थी कि आज उसकी, मिसेज अग्रवाल से अनबन हो गई उसने अनबन का कारण बच्चों की लडाई बताया।

पर बच्चो की लडाई मे मनीषा ने क्यो नही चुप्पी साध ली? ठीक है बच्चे लडते भी है और कुछ ही देर बाद खेलने भी लगते है। उसे तो चाहिये था कि बच्चों को समझा दे।

लेकिन ऐसा असभव सा है कि वह मीठा बनकर बोल ले। यदि वह मीठा बनकर बोलने का प्रयास करती तो शायद यह 'घुटने' जैसी स्थिति से बच निकलती। पर उसे 'हम ही क्यो झुके' वाले अहम ही ने लोग बागो से काट रखा है। और वह इस तरह एक दूसरे के समीप होते हुए भी निर्जन टापू की तरह अलग-अलग पडी हुई है। शायद वह इसी मे अपनी अच्छाई समझ ने लगी है।

मैं नीद के कसाव मे आता जा रहा हूँ। मैंने अब यहाँ से चलने का निर्णय ले लिया है। दरवाजा बद ही रहेगा। खुलेगा नही। मनीषा की प्रतिष्ठा बनी रहेगी। मुझे अब इस प्रतिष्ठा को निभाने के लिये रात भर बाहर ही किसी तरह गुजारनी होगी। यही सोचता हुआ सडक पर चलने लगा हूँ। जी चाह रहा है कही एक कप कड़क चाय पीऊँ।

# जूड़े के फूल

पुष्प लता पड्या

सीमा जूड़े में नित्य फूल लगाये घर पर आती। इस जूड़े के फूलों ने सुनील को भीतर-भीतर बड़ा व्यथित कर दिया था। जब सीमा स्कूल से लौटती तो सुनील की प्रथम दृष्टि जूड़े पर ही पड़ती। नयी वेणी या खिले फूल देखकर उसके मन में सन्देह जन्म लेने लगते। लेकिन वह कहती कुछ नहीं। केवल उसकी दृष्टि से पता लग जाता कि वह अपने मन में दुखी है और यह दुःख उसके अन्तर्जगत में एक शान्त क्रोध को पनपाये जा रहा है, जिससे वह गुमसुम हो गया है। उसका स्वभाव ही ऐसा था, जब उसे गुस्सा आता तो

चुप्पी साध लेता और अक्सर घर से बाहर रहने लग जाता।

घर में सभी तरह का सुख होते हुए भी यह क्या है ? सोच-सोच कर सीमा भी दुखी हो उठती। सुनील की चुप्पी और घर से बाहर रहने की वृत्ति से वह यह तो समझ गई कि वह नाराज है, लेकिन क्यों नाराज है यह उसे अनायास ही समझ में नहीं आया। वह अपने मन में सोचने लगी कि आखिर उससे ऐसी कौन-सी गलती हुई है ? साहस करके पूछती--'आजकल आपको क्या हो गया है ?' तो उत्तर मिलता--'कुछ नहीं, खुश रहो।'.

कहने को कह देता; लेकिन मन ही मन अधिकाधिक घुटता रहता। सोचता--नौकरी छुड़वा दूं.........? फिर विचार आता इसकी तनख्वाह बन्द हो गई तो वही मुसीबतें फिर सामने आ खड़ी होगी। लेकिन ऐसी भी क्या नौकरी ? जहां से रोज जूड़े पर फूल लगवा कर आना पड़े। उसने तय किया कि वह इस रहस्य का पता लगायेगा। ऐसा सोच कर चुपके-चुपके वह पीछे लगने लगा। स्कूल के आस-पास वक्त-बेवक्त चक्कर लगाने लगा ? लेकिन कोई सुराग हाथ नहीं आया। वह मन-ही-मन इतना क्रोधित हो गया कि उसने समय पर नहाना, खाना, सब छोड़ दिया। किसी समय घर में खा लेता किसी समय बाहर होटल में ही खा लेता। कभी दिन भर घर में पड़ा रहता तो कभी दो-दो दिन घर ही नहीं आता। दोनों की लड़ाई में बच्चे अस्त-व्यस्त रहने लगे।

सुनील की नाराजगी सीमा की बीमारी बन गई। उसकी घृणा से वह धीरे-धीरे क्षीण होती गई। दिन भर स्कूल में काम करना, सुबह-शाम घर का काम, बाल-बच्चों की संभाल और ऊपर से सुनील की नाराजगी। कुछ ही दिनों में सीमा जर्द पड़ने लगी। हर समय बुखार रहने लगा। गोलियाँ खाती, स्कूल जाती, बिस्तर पर पड़ी रहती उसकी तरफ ताकती रहती।

होते होते बुखार बहुत बढ़ गया। सिर व कमर में दर्द होने लगा और वह स्कूल जाने में बिल्कुल असमर्थ हो गई। अब उसने बिस्तर पकड़ लिया।

सुनील ने उसकी यह स्थिति देख कर वैद्यजी को बुलाया। कई

दिनों तक वैद्यजी का इलाज चला लेकिन सब दवाएँ पत्थर पर उड़ेली हुई —सी बे असर रही।

घबराकर अस्पताल भर्ती होना पड़ता। वहां उसकी पूरी तरह जांच की गई। दवाएं, इन्जेक्शन, कैप्सूल, फल दूध डाक्टर आते; दवा पर दवा बदलते ? पर उसका बुखार एक सौ दो और एक सौ चार के बीच-ही बना रहता। सीमा कुछ ही दिनों में बहुत अशक्त हो गई थी।

महीना भर अस्पताल में रहने पर भी कोई असर नहीं हुआ। घबराहट और तकलीफ बढ़ती जाती थी। ऐसी स्थिति में भी वह सुनील का मुंह ताका करती और सोचती—कब मुझ से ठीक तरह से बोलेंगे। उसे लगता जैसे सुनील से बोले हुए उसे युग बीत गये हो।

उसे शादी के वे नये-नये दिन याद आते जब सुनील दिन में पच्चीस चीजें उसे खुश करने के लिए लाया करता था। जब दिन भर वे कमरे में हँसी ठिठोली करते रहते और घर के अन्य लोग कुढ़ते रहते।

भरा घर था। सास–ससुर देवर, ज्येष्ठ–ननद ! पति-पत्नी में अच्छी घुटती ही थी। दोनों प्रसन्न थे। किसी को किसी से कोई शिकायत नहीं। गरीब घर था इसलिए श्रम अधिक करना पड़ता था, किन्तु वह श्रम स्नेह के आगे गौण था। बल्कि उस श्रम में भी एक प्रकार का आनन्द था।

कष्ट यही था कि मँहगाई बढ़ती जा रही थी और आमदनी कम थी। इसलिए सास उसे कभी-कभी कोसती—'घर संभालना नहीं आता। दोनों पैसे उड़ाने में लगे हैं। जब इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ता तब वह सुनील को कहती—'पानी भरने जाती है तो दो घण्टे से लौटती है। बाहर जाना हो तो बिना पूछे चली जाती है और हम ढूंढते ही रहते हैं, वह कहां गई ! ऐसी क्या आजादी ? कुछ दाब में रहना चाहिए ना।'

सुनील पर वैसे तो मां की बातों का प्रभाव नहीं पड़ता लेकिन उन दिनों जैसे वह अपनी नाराजगी के लिये थी की आहुती चाहता था। एक दिन मां ने कहा—घंटा भर हुआ पानी लेने गई है, अभी तक नहीं आई "अब यहां सब काम पड़े है।"

इशारा पाते ही सुनील भड़क उठा। सीमा पानी भर कर लौटी

तो गरज कर बोला–ठीक से काम करना नही आता तो अपने मैके चली जाओ·········अगर तुम यहाँ से नही गई तो मैं खुद कही–चला जाऊंगा अब तुम्हारी मेरी नहीं निभेगी।'

उसका यह स्वरूप देखकर सीमा रो पडी। गुस्से-ही-गुस्से में सुनील ससुराल आकर भी यह कह आया कि अपनी लडकी को अपने घर ले जाइये और घर धन्धे सिखा कर भेजियेगा। हमारे घर मे ऐसी रानाई नहीं चलेगी।

सुनील के मुंह से ऐसी अनपेक्षित बात सुन कर सीमा के पिता को भी क्रोध आ गया और तुरन्त उन्होने सीमा को बुलाकर कहा–मेरे एक बेटा नही, दो है। जा, तू अपना कपड़े-लत्ते लेकर यहा चली आ।" लेकिन सीमा नही मानी। रोती-रोती-ही वापस ससुराल आ गई।

जब कभी पैसो की तकलीफ पड़ी तब सीमा सुनील से कहती–आप कहें तो मै भी कही नौकरी कर लू। लेकिन सुनील हमेशा मना कर देता "औरतें नौकरी करेंगी तो आदमी क्या बेलन–चकला लेंगे।''

लेकिन पैसो के अभाव में कई कठनाईयाँ आने लगी, कभी बच्चो के लिए दूध नही, कभी सब्जी के पैसे नही, कभी आटा नही तो कभी नमक नहीं। ऐसी स्थिति में बच्चो को पढाना और जाति बिरादरी मे अपनी इज्जत बनाये रखना तक मुश्किल हो गया। नहीं चाहते हुए भी नौकरी करनी–ही पडी। सुनील ने ही सब पता लगाया और सीमा को सस्था मे छोड आया। छोटे-छोटे बच्चो को एक नौकरानी के भरोसे छोड कर दिन भर स्कूल मे रहते हुए सीमा का मन बडा कष्ट पाता। नौकरी भी उसे नही भायी। लेकिन यह सोचकर कि इस तरह भी घर की स्थिति बने, वह स्कूल जाने लगी।

कुछ ही दिनों मे वह स्कूल में लोकप्रिय हो गयी। बालक उससे प्रसन्न थे। उसे चाहते थे।

"प्राइवेट सस्था थी" जहां खाते-कमाते लोगों के सभ्य बच्चे पढ़ते थे और अपनी प्रिय बहिन जी को कुछ न कुछ देना चाहते थे। कभी अपने हिस्से की गोलियां सामने करते कभी सन्तरे और कभी पुष्पों को।

पर उसको हर कोई भक्त झिड़क कर आगे बढ़ जाने को कह देता है ।

हां, अब एक दयालु प्रकृति का व्यक्ति उस पर कृपा कर रहा है। बालक की हथेली पर उसने दो नए पैसे का एक सिक्का रख दिया है और उससे एक पैसा वापिस मांग रहा है ताकि उस एक पैसे से किसी अन्य भिखारी पर भी दया दिखा कर पुण्य लाभ प्राप्त कर सके। पर उस बालक के पास पैसे कहां ? उसके इनकार सूचक सिर हिला देने पर वह व्यक्ति पूरा ही सिक्का देकर आगे बढ गया है । जरा उस व्यक्ति की चाल तो देखो ! ऐसे अकड़ कर चल रहा है मानो उसका भी दानवीरों की सूची मे नामांकन हो गया हो और वह बालक ऐसे प्रसन्न हो रहा है जैसे किसी लाटरी से सान्त्वना पुरस्कार मिल गया है।

बालक तुरन्त गुलगुलो की दूकान पर पहुंच गया और सिक्का उस काले कलूटे मोटी तोंद वाले दुकानदार के हाथ मे देकर गुलगुले मांग रहा है। पर दूकानदार का ध्यान तपती भट्टी पर तले जा रहे गुलगुलों की तरफ है। तलने से आने वाली गन्ध उसकी भूख को और तीव्रता प्रदान कर रही है। अतः बालक उसे पुनः याद दिलाता है। दूकानदार मैली व तेल से सनी धोती से अपने मुंह और नंगे बदन का पसीना पोछ कर बालक की ओर मुड गया और क्रोध मे बड़बड़ा रहा है-'बड़ा आया है स्साला धन्ना-सेठ दो पैसे के कभी गुलगुले मिला करते हैं ?'

बालक वही खड़ा रहा तो दूकानदार ने उसे दो गुलगुले पकड़ा दिए हैं। बालक ने वही अपने मुंह मे डाल लिए एव अब कुछ सन्तुष्ट है ।

अब वह पुनः आने-जाने वालों से मांगने मे व्यस्त हो गया है ।

दूर से एक सेठ इसी ओर आ रहा है। बालक उसकी अच्छी वेशभूषा को देख उसी की ओर चला गया है। अब वह उससे रिरियाते हुए पैसे माग रहा है। सेठ उसे दुत्कार कर भाग जाने को कह रहा है। पर बालक अब भी उसके पीछे-पीछे चल रहा है। शायद उसे कुछ आशा है। बालक फिर मागर हा है। पर सेठ नही पसीजा। सेठ बालक को थप्पड दिखा कर झिड़क रहा है, गालियां भी दे रहा है जो स्पष्ट सुनाई नहीं दे रही हैं। बालक ने उसका पीछा छोड़ दिया है।

तब वह एक नए फैशन में सजे एक शालीन-से दिखने वाले युवक से मांग रहा है। युवक उसके नन्हें हाथों को अपने हाथ में लेने का प्रयास करता है। बालक झिझक रहा है। पर उस युवक ने बालक से हाथ मिला लिया और चल पड़ा। बालक उस युवक की ओर देख रहा है।

मुझे याद आ रहा है वही सेठ जो अभी-अभी उस बालक को पैसा मांग लेने के अपराध में दुत्कार चुका है इसी गुलगुलों की दुकान पर गुलगुले खरीद रहा है। उसे भी शायद मोक्षप्राप्ति की भूख जो है, तभी तो यहाँ आया है। शायद एक किलो गुलगुले खरीदा है। चील-कौवों को खिलाने में व्यस्त हो गया है। बहुत प्रसन्न दीख रहा है। थोड़ी-थोड़ी समय पश्चात् वह ध्यान करने के लिए आंखें और दृष्टि डाल लेता है कि उसे कोई देख भी रहा है या नहीं ? कहीं यहाँ खड़े होकर जनता की नजर में किया धर्म भी व्यर्थ में न चला जाये। उसकी मुख मुद्रा देखने से ऐसा लगता है कि इससे अधिक धर्मात्मा अन्य शायद ही कोई हो।

सेठ को वहाँ खड़े देख कर बालक पुनः दुकान पर एकत्रित हो रहे हैं। कई सहमते हुए सेठ के समक्ष हाथ फैला कर उससे गुलगुले मांग रहे हैं। लगता है सेठ की कृपा दृष्टि इन पर नहीं है। उसे तो धर्म करना है। व्यर्थ ही क्यों गवा देगा ? बालकों के चेहरों पर निराशा की रेखाएं उभर आती हैं। अब बालक उत्सुकता से आकाश की ओर ताक रहे हैं। सम्भवतः वे ईश्वर से यह प्रार्थना कर रहे हैं कि इस बार चील की पकड़ में गुलगुला न आए और नीचे गिर पड़े।

कहते हैं सच्चे मन से की गई प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं जाती। वह देखो ! इनकी प्रार्थना के ही सुफल के कारण एक गुलगुला नीचे आ गिरा है। बालकों का वही चील झपट्टा। लगभग ८–१० वर्षीय एक बड़ा लड़का प्राप्त करने में सफल हो गया है और तुरन्त उसने गुलगुला अपने मुंह में भी डाल लिया। बेचारे के गुलगुला प्राप्त करते समय एक साईकिल से टक्कर भी लग गयी पर उसकी सफलता ने उसे भुला दिया है। वह अन्य बालकों की ओर विजयी दृष्टि डालता है। पर उन सब के चेहरों पर मुर्दा-नगी छा चुकी है।

दूकान की ओर देखता हूं। एक गाय सेठ के पास आ गई है और गुलगुले खाने का प्रयास कर रही है। सेठ उसके मुंह में दो गुलगुले देकर बहुत प्रसन्न है। अब उसके निकट एक काला कुत्ता और आ गया है। दयनीय-सा बन चीं-चीं कर रहा है। सेठ ने द्रवित होकर उसे भी एक गुलगुला खिला दिया है।

सेठ की दयालुता से प्रभावित होकर एक छोटा-सा बालक भी उससे कुछ मांगने की हिम्मत जुटा रहा है। आखिर उसने मांग ही लिया है। इस बार सेठ ने तिरस्कार पूर्ण दृष्टि डालकर अपना मुंह फेर लिया और चील-कौओं में अपना मन रमा रहा है। बालक सवेरे से ही भूखा है। उसे यहां भी कुछ नहीं मिल पाया। किसी धर्मात्मा कहलाने वाले ने उसे कुछ दे देने की आवश्यकता ही नहीं समझी।

बालक भूख से तड़प रहा है। अतः वह पुनः सेठ से मांगने का प्रयास कर रहे है। अब वह सेठ के बहुत निकट चला गया है। इससे सेठ को अपने धार्मिक कृत्य में बाधा-सी प्रतीत हो रही है। यह उसे असह्य है। बालक उससे गुलगुलों के लिए प्रार्थना कर रहा है। लो! उसने क्रोध में आकर उस बालक के एक झापड़ मार दिया। बालक चोट नहीं सह सकने के कारण गिर पड़ा है। सेठ ने अपना गालियों का भण्डारा खोल दिया है—स्साला! हरामी का बच्चा मेरे हाथ लगाता है? कहां से आ मरते हैं? स्साले!...... नीच ..... नालायक ...... नरक के कीड़े धरम-करम भी सुख से नहीं करने देते। सेठ के प्रवचनों से प्रभावित होकर दूकानदार सभी बालकों को डांटता है। भागो! भाग जाओ यहां से नहीं तो बुलाता हूं पुलिस को। भागो।

बालकों पर मुझे तरस आ रहा है। विशेष कर उस बालक पर जिसके सेठ ने अभी थप्पड़ मारा है। अचानक मेरे हाथ पैंट की जेब में चले गये ताकि मैं भी इन्हें कुछ दिलवाकर पुण्य अर्जित कर सकूं। पर शीघ्र ही तार द्वारा सूचना मिल गई कि जेबों में पैसे रखे ही कब थे? मुझे बड़ी निराशा हो रही है। मेरा जी घबराने लगा है। मैं यहां से भाग जाना चाहता हूं। पर हिम्मत साथ देने से इनकार कर रही है। पास ही पड़ी एक नाई की बेंच पर बैठ गया हूं।

लो ! एक और गुलगुला गिर गया। वो मारे मारे बा...
ओह ! वह देखो उस छोटे से बालक को। कैसी भीड़ भरी में भाग रहा
रहा है !......वह देखो अभी भीड़ के नीचे दब जाता। अचानक
मुंह से चीख भी निकल पड़ी। पास खड़े दो एक आदमी मुझे ताक रहे
[illegible] रहे हैं। मैं आगे बढ़कर सम्भालता हूं। पर हाथ
उस बालक के पहुंचने से पूर्व ही दूसरे बालक पहुंच गये। आपस में [illegible]
गई है। लो ! छीना-झपटी में गुलगुला उसके हाथों से निकल कर सड़क
पर जा गिरा है।

वह छोटा सा बालक फिर दौड़ रहा है। इस बार उसके हाथ आ ही गया समझो। ओह !......अभी वह मोटर साइकिल के नीचे आ जाता। अचानक ब्रेक लग जाने के कारण बालक बच गया है। पर उसके घुटने में गहरी चोट लगी है। मोटर साइकिल के आकस्मिक धक्के से गुलगुला नीचे गिर पड़ा और वह उस कुत्ते के मुंह में चला गया। अब मुझ से और अधिक दयनीय दृश्य देखा नहीं जा सकता। कैसी विडम्बना है कि भीख से बचा तो मोटर साइकिल से टकरा गया और हाथ में आया गुलगुला भी चला गया। धर्मात्माओं के समक्ष भूखे बालकों के साथ हो रहे मज़ाक को और अधिक न देखना पड़े इस हेतु मैं वहां से चल पड़ा हूं मन ही मन स्साले सेठ को गालियां दे रहा हूं। इसी के कारण बच्चे के चोट लगी है। यही दोषी है। हूं ·····! स्साला कहता है धरम-करम मुख से नहीं करने देते। चील कौओं को न खिलाकर यदि इन्हें खिला देता तो क्या स्वर्ग के द्वार बन्द हो जाते ? हूंह! स्साला ! हरामी ! बच्चे तो उसके समक्ष भूख से तड़प रहे हैं और यह धर्मात्मा कहलाने का स्वांग रचता है। मानव कुत्तों से भी गया बीता ? स्साला, दुनिया को दिखाता है।

मैं चल रहा हूं। पर मेरी दृष्टि अब भी उस छोटे से बालक ही है। बालक से आत्मीयता-सी हो गई है। धरती की गोद में बालक अपने घुटने को दाब रहा है। उसकी आंखों से आंसू टपक हैं। रोते-रोते भी उसका ध्यान आकाश की ओर है। लो, सौभाग्य से गुलगुला उसके बिल्कुल निकट ही गिर पड़ा है। सोचता हूं इस

बार वंचित नहीं रह जाए ? पर सौभाग्य ही समझो। बालक ने उठा कर मुंह में रख लिया है। यह देखकर मुझे भी प्रसन्नता हो रही है। सोचता हूं इसे भी अस्पताल पहुंचा दूं या अपने ही घर क्यों न ले चलूं ? पर देश में ऐसे कितने ही बालक होंगे मैं किस-किस को ले जाऊंगा ?

# पागल

प्रेम कुमारी कौशिक

नवम्बर का महीना था। हल्का गुलाबी जाड़ा। दिन के तीन बजे थे। मैं अपने कमरे में बैठा-बैठा एक उपन्यास पढ़ रहा था। उपन्यास समाप्त कर मैं कमरे से बाहर आ गया। अकेला बैठा बैठा बोर हो रहा था। मन बहलाने के लिए मैं डा० मित्रा के घर की ओर चल दिया।

मित्रा मेरे घनिष्ठ मित्रों में से हैं। उनका विवाह हाल ही में हुआ है। आयु लगभग २५ वर्ष की है। मित्रा मानसिक चिकित्सालय के डाक्टर हैं। नगर में उनकी काफी धाक है। मित्रा के घर पहुंच कर मैंने देखा कि वे

रोब बना रहे हैं। मुझे देखते ही बोले, 'आओ भई, आज तो काफी दिनों बाद दर्शन दिए।'

मैंने कहा 'बस ऐसे ही। सोचता हूं जब तुम्हीं नहीं आते हो, तो मुझे ही बार-बार आने में कुछ बोरियत-सी हो जाती है।

मिश्रा बोले, 'अरे यार, तुम्हारी कोई एक बात थोड़े ही है। यहां तो सिर खुजाने की फुरसत नहीं मिलती। अस्पताल का काम ही बहुत है।' फिर मिश्रा अपनी पत्नी को आवाज देते हुए बोले, 'अरे भई सुनती हो, ये आपके देवर जी आये हैं। चाय-वाय कुछ ले आओ।'

उनकी पत्नी की आवाज आई, 'अभी आई।'

मिश्रा मेरी ओर मुंह कर बोले, 'चलो अच्छा हुआ तुम आ गये। इस बहाने हमें भी चाय मिल जायेगी। नहीं तो हमें कौन पूछता ?

इतने में कमला चाय की ट्रे लेकर आ गई। कमला बोली, 'नमस्ते वकील साहब। आज कहां भूल पड़े।'

मैं एल. एल. बी. कर रहा था। इस कारण कमला मुझे मजाक में और वैसे भी वकील साहब ही कहा करती।

मैं बोला, 'बस आप के और भाई साहब के दर्शन करने चला आया। नहीं तो आपके तो दर्शन होने ही कठिन हैं।'

बातचीत के साथ-साथ चाय समाप्त हुई। डाक्टर कमला से बोले, "भई, जरा कोट तो लाना। अस्पताल हो आऊं।'

कमला कोट ले आई। वह मुझसे बोले, 'भई तुम तो अपनी भाभी के साथ बैठोगे या चलोगे मेरे साथ।'

मैंने भाभी की ओर देखते हुए कहा, 'क्यूं भाभी, क्या आज्ञा है आपकी ?'

कमला मुस्कराते हुए बोली, 'आज्ञा क्या है ? चाहे इनके साथ जाओ या यहां बैठो, शाम के खाने के बाद ही जाना है तुम्हें तो।'

कमला का अनुरोध मैं टाल नहीं सका और बोला, 'अच्छा भाभी जैसी तुम्हारी आज्ञा। अब तो फिर जरा भाई साहब के साथ हो ही आऊं।

लूँगा।'

मैंने इसका मनोविश्लेषण कर इसके मस्तिष्क का अध्ययन किया है। इसके सम्बन्धियों से पता चला है कि इसकी एक बहिन थी, जिसे यह बहुत प्यार करता था। इसकी बहिन को एका-एक कैन्सर हो गया। कैन्सर तुम जानते ही हो, 'रेडियो एक्टिव धूल-कण' से होता है। कैन्सर ने उसके फेफड़े पर आक्रमण किया। उसे बचाने में कोई कसर उठा न रखी। पर भगवान के आगे किस की चलती और एक दिन उसकी बहिन की मृत्यु हो गई। उसी दिन से यह पागल हो गया। इसे उसकी मृत्यु से बड़ा भारी मानसिक आघात पहुँचा जिसमें यह अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठा।

यह साइंस का बड़ा अच्छा विद्यार्थी था, इस कारण सब बातें जानता था और कभी-कभी तो अब भी वैज्ञानिक विषयों पर घन्टों बोलता रहता है। इसे भली प्रकार पता था कि उसकी बहिन की मृत्यु का एक मात्र कारण बम परीक्षण थे। उस कारण इसके मस्तिष्क में बस एक बात बैठ गई है—बम परीक्षण करने वालों से बदला लेने की।'

डाक्टर की सिगरेट खत्म हो चुकी थी। दूसरी सुलगा कर बोले, 'न जाने मुझे इससे क्यों सहानुभूति हो गई है। एक दिन जब मैं उसके पास गया तो उसकी आँखों में आँसू थे। मुझे देख कर वह बोला, 'डाक्टर तुम मुझे पागल समझते हो और जो बम परीक्षण कर रहे हैं उन्हें वैज्ञानिक समझते हो पागल तो वो है। तुम उन्हें क्यूं नहीं बन्द करते। डाक्टर, मैं कहता हूँ मुझे छोड़ दो बस कुछ देर के लिए, मैं उन्हें, उनके बमों को गहरी नींद में सुला आऊं फिर तुम मुझे बन्द कर लेना। मेरी बहन⋯⋯। डाक्टर तुम क्या जानो⋯⋯।' उसकी बातें सुन मेरी आँखें भी छल छला आईं।

डाक्टर से मैं पूछ बैठा 'क्यूं डाक्टर, क्या यह ठीक नहीं हो सकता?

डाक्टर बोले, 'भई मैं तो पूरी कोशिश कर रहा हूं। लेकिन मानसिक आघात बहुत गहरा पहुँचा है इसलिए कठिन है।'

खाना खाने के पश्चात् मैं अपने कमरे की ओर चल दिया। मेरे मस्तिष्क में उस पागल की आकृति घूमने लगी। मैं सोच रहा था क्या वह पागल है या उसके अनुसार बम परीक्षण वाले पागल हैं। ●

# स्वर्ण पदक

उदयकिशन व्यास

पारो की हर समस्या का समाधान दिनेश के पास था। उसके हर प्रश्न का उत्तर दिनेश दिया करता था। पारो को दिनेश पर पूर्ण विश्वास था और दिनेश उस विश्वास को बनाये रखने का प्रत्येक प्रयास करता। जब कभी पारो और दिनेश मे अन बन हो जाती तो पारो के पिता मध्यस्थता करने मे नही चूकते। वे दिनेश से बेहद प्रसन्न थे। ठाकुर साहब ने अपना अन्तिम स्वास तोडते समय पारो के पिता से कहा था, रामू, तुमने हमारी जीवन भर देखभाल की है। अब एक एहसान और करना···दिनेश का ख्याल··· रखना'

उस समय दिनेश ७ वर्ष का था। रामू बड़ी उलझन मे फस गया। वह दिनेश को कैसे समझाता कि उसके पिता की अन्तिम आज्ञा क्या थी······ वह दिनेश को कैसे कहता कि उसको अपनी भी कुछ परेशानिया है। फिर ठाकुर साहब का कोई निकट संबंधी भी नही था जिसे वह अनाथ दिनेश को सौंप देता। रामू ने समस्त विश्वास जुटा कर दिनेश और पारो का पालन पोषण शुरू किया।

दिनेश अपने पिता की तरह हर क्षेत्र मे दक्ष था। वाकपटुता दिनेश की मौलिक विशेषता थी। पारो भी दिनेश की भाति होनहार बालिका थी पर वह हठी अधिक थी। पारो को तर्क–वितर्क करने मे बडा मजा आता था लेकिन उसे दिनेश के तर्क के आगे सिर झुकाना ही पडता था। वह दिनेश से पूरे तीन वर्ष छोटी थी लेकिन अध्ययन के क्षेत्र मे पूरे चार दर्जे पीछे थी। वह दिनेश के स्कूल मे नही पढती थी फिर भी उसके हैड़मास्टर का नाम, उसको पढाने वाले अध्यापको के नाम और दिनेश की क्लास के अधिकाश लडको के नाम उसे याद थे। जब कभी दिनेश की स्कूल मे सास्कृतिक कार्यक्रम होता तो वह दिनेश के साथ अवश्य जाती। स्कूल से मिलने वाले समस्त इनाम और 'कलर' वह दिनेश से वहीं ले लेती दिनेश के इनाम को वह अपनी निधि मानती थी। पिछली बार स्कूल से दिनेश को चादी का पदक सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी होने के उपलक्ष मे प्राप्त हुआ तो पारो उछल पडी और उस पदक को उसने मच पर जाकर दिनेश से छीन लिया।

अब दिनेश कालेज का विद्यार्थी है और पारो अपनी पढाई छोड़-कर घर का कार्य करती है। रामू पुराने विचारों का आदमी है अत पारो का आगे पढ़ना उसे अच्छा नहीं लगता। दिनेश ने एक बार कहा था, 'रामू काका, इसे पढने से क्यो रोकते हो ?' तो रामू ने हस कर टाल दिया। दिनेश भी अब गम्भीर बन गया है। वह अपनी पढ़ाई मे अधिक व्यस्त रहता है। दिनेश का गम्भीर रहना और उसके स्वभाव मे परिवर्तन आना पारो के लिए दुःख का विषय है। वैसे पारो किसी-न-किसी बहाने दिनेश के पास चली तो अवश्य जाती लेकिन वह उससे यह पूछ नही सकती कि वह इतना गम्भीर क्यों बन गया है ? एक दिन शाम को दिनेश

में बाहर निकलते समय पारो के सिर से कहा ...... "बाबा, आज मैं इस
के स्वर्ण पदक हमारी कालेज का सर्वोत्तम उपहार है।" रामू ने कहा ........
'अच्छा दिनेश बाबू।' दिनेश चला गया। वह पिछले दो-चार सालों से
पारो को अपने साथ अंग्रेजी किताबों के बारे में बताता। आज न जाने
क्यों पारो की आँखों में कुछ था दिनेश और वे बात-बातों की तरह
बात नहीं। रामू ने यह सब देख लिया था इसलिए पारो से बोला-बेटी,
दिनेश ने बहुत कुछ किया है पर तुम कोई बच्ची नहीं हो। मुझे बहुत
खुशी है कि दिनेश तुम्हें पसंद करता है।'

दूसरे दिन पारो हमेशा की तरह दिनेश को जगाने गई। दिनेश को देख कर वह विस्मित रह गई थी। पारो ने कौतूहलपूर्ण दृष्टि से उसको देखा। वह आज किताबों को छूने ही वाली थी कि दिनेश ने करवट बदली। वह जाग गया था। उसने कहा-'पारो कल मुझे यह स्वर्ण पदक इनाम में मिला था परन्तु इसे मैं तुम्हें नहीं दूंगा।' पारो अपनी सीमा जानती थी। वह बिना बोले ही दिनेश की किताबें ठीक से रखने लगी। तभी एक किताब उसके हाथ से फिसली और उसमें से खिसक कर एक फोटो बाहर आ गया। पारो ने फोटो को देखा। दिनेश ने कहा-'पारो यह फोटो रेखा का है। हमारी ही कालेज में पढ़ती है बहुत अच्छा गाती है। इसके पिता शहर के बहुत बड़े रईस हैं।' पारो के लिए यह परीक्षा की घड़ी थी। वह भी अपने को परखने पर तुली थी। अपने सयम की सीमा जानना चाहती थी। अपने धैर्य की गहराई मापना चाहती थी। एक कृत्रिम हँसी चेहरे पर लाकर पारो ने सिर नीचा कर लिया और दिनेश के लिए चाय लाने चली गई। दिनेश सब कुछ समझकर भी कुछ नहीं समझना चाहता था।

दिनेश कालेज जाने लगा तो रामू ने कहा 'दिनेश बाबू, आज तुमसे कुछ कहना है, कालेज से सीधे घर चले आना। वैसे कोई खास काम नहीं है।' 'अच्छा रामू काका' कह कर दिनेश चला गया। दिनेश के चले जाने पर पारो ने कहा-'बाबा, आपको मालूम है दिनेश को कल स्वर्ण पदक इनाम में मिला था? रामू ने कहा-'नहीं पारो, पर तुम कौनसा उसे दिनेश के पास रहने दोगी?' पारो ने कुछ देर रुक कर कहा 'बाबा, आप दिनेश बाबू से उनकी शादी की बात क्यों नहीं करते?' रामू ने पारो की ओर

आश्चर्य से देखा।' बाबा 'दिनेश बाबू को एक लड़की पसंद है, उसका फोटो भी वो अपने पास रखते हैं। बहुत सुन्दर है रेखा, और उसका बाप बहुत बड़ा रईस है।' पारो अचानक रुक गई। उसने देखा कि बाबा की आंखें भर आई हैं। और फिर उसे अपनी भूल का ध्यान आया। उसने शायद एक व्यक्ति को धनवान बताकर रामू काका को अपनी गरीबी का आभास करा दिया था। पारो अब तक कृत्रिम रूप से हंसना सीख गई थी इसलिये उसने अपनी हँसी का सहारा लेकर 'बाबा' का दुःख हल्का करने का असफल प्रयास किया। वह कहने लगी 'बाबा, आप तो ऐसे रो पड़े जैसे उस लड़की के बाप आप ही हैं और वह लड़की आज ही आप से विदा होने वाली है।' 'रामू ने सम्भल कर कहा 'नहीं पारो भला ये आंसूं कहीं यूं ही थोड़े बहाये जाते है। ये तो तुम्हारी डोली उठते वक्त ही काम आयेंगे।

फिर पारो शर्मा कर चली गई।

दिनेश कालिज से आया तो रामू उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। पारो ने दिनेश के सामने खाना रख दिया और चली गई।' रामू, काका आज तुम कुछ कहने वाले थे।' रामू काका बात शुरू करने का क्रम जानते थे बोले, 'दिनेश बाबू पहले खाना खालो, फिर आराम करो। मुझे भला क्या कहना है। गांव से साहूकार आया था। कहने लगा कि रामू तुम अपनी जमीन बेच दो। लेकिन दिनेश बाबू यह कैसे हो सकता है? एक जमीन का टुकड़ा ही तो है ले-देकर मेरे पास इसे तो मैं पारो का दहेज समझता हूं। आखिर एक दिन तो पारो के हाथ पीले करने ही पड़ेंगे'' दिनेश के मुंह से बीच में ही निकल गया, 'लेकिन बाबा मैं तो दहेज में विश्वास ही नहीं करता। मेरा मतलब है दहेज एक सामाजिक कुरीति है और इसे मिटाना हम सबका धर्म है।' रामू काका ने कहा, 'ठीक कहते हो दिनेश बाबू, लेकिन इस कुरीति को लड़की वाले कैसे मिटा सकते हैं? और फिर आज तो जमाना ही बदला हुआ है। आज लड़की से पहले उसका दहेज, गुणों से पहले उसका सौन्दर्य, और शिक्षा से पहले उसकी पहुंच देखी जाती है।' रामू काका कुछ देर के लिए रुक गये फिर बोले—'लेकिन दिनेश बाबू असली बात तो मैं कहना भूल ही गया। बात यह है कि मैं अब गांव जाना चाहता हूं। पारो अब सयानी हो गई है। गांव में रहने से पारो गांव

का लगा ... पारो को देख लेने और अच्छा लड़का हाथ लगते ही पारो का विवाह पक्का कर दूंगा। दिनेश बाबू एक बात कहूं मैं, दिनेश ने प्रयास करके स्वीकार में सिर हिला दिया। रामू बोला, 'दिनेश बाबू हमारे चले जाने से यह घर सूना हो जायेगा। तुम चाहो तो मैं देखने के लिए से बात करूं।' दिनेश को कुछ नहीं सूझा वह केवल इतना ही कह पाया— 'काका, इस बारे में पारो से पूछ लेना। वह मेरी पसंद जानती है।' रामू काका ने उसे बताकर दिनेश से कहा— 'अच्छा दिनेश बाबू तो फिर आज रात की गाड़ी से हम गांव चले जायेंगे।' फिर रामू काका अपनी कोठरी में चले गये।

दिनेश को आज पहली बार कुछ अजीब लगा। उसे महसूस हुआ कि आज उसकी मां होती तो वह उससे कहता कि मां पारो और रामू काका को गांव जाने से रोक लो। दिनेश को लगा कि पारो एक लड़की है, पराई है। रामू काका केवल पारो के ही लिए हैं और वह स्वयम् अकेला है। दिनेश के दिल पर बोझ बढ़ता ही गया। आज तक उसने पारो को एक केवल साधारण लड़की समझा था लेकिन न जाने क्यों आज उसे पारो दुनिया की सबसे अच्छी लड़की प्रतीत होने लगी। आज वह अपने को पारो की तुलना में बहुत ही साधारण-सा व्यक्ति समझने लगा और फिर उसके मन में गांव के उस लड़के के प्रति ईर्ष्या भी होने लगी जो पारो को सदा के लिए अपना बना लेगा। अनायास ही दिनेश के कदम पारो के कमरे की ओर बढ़ गये। दिनेश ने देखा पारो अपनी साड़ी के छेद को रफू कर रही थी। जब उसने दिनेश को देखा तो वह न जाने क्यों सहम गई। अंगुली में चुभी हुई सुई का उसे ख्याल ही नहीं आया। दिनेश ने अंगुली से सुई निकालने को हाथ बढ़ाया तो पारो पीछे सरक गई और सुई अपने हाथ से निकाल ली। दिनेश के विश्वास को आघात पहुंचा। उसे अपना बचपन याद आ गया। एक बार जब पारो के पांव में कांटा चुभ गया था तो वह रोती हुई दिनेश के पास ही तो आई थी और दिनेश ने बहुत परिश्रम करके उस कांटे को निकाला था। लेकिन तब पारो छोटी थी, भोली थी, नासमझ थी। आज पारो बड़ी हो गई है। उसके और पारो के बीच उम्र की दीवार है, जमाने का ख्याल है और गलत फहमी का पर्दा है। दिनेश ने

कुछ देर रुक कर पारो से कहा "पारो, मैं नहीं जानता क्या कारण है लेकिन इतना अवश्य समझता हूँ कि तुम कुछ बदलसी गई हो। रामू काका ने भी मेरे लिए एक सीमा निर्धारित करदी है। मैंने तो सोचा भी नही था कि काका, तुम और मैं कभी जुदा होंगे। रामू काका तुम्हारा रिश्ता पक्का करने के लिए गाव जा रहे हैं और हा, मैंने भी अपने जीवन का फैसला तुम पर छोड दिया है।" यह कह कर दिनेश अपने कमरे मे आगया। पारो विचारों मे खोगई। उसकी अगुली से निकला खून अब जम गया था और पारो ने उसे साफ करना भी कोई जरूरी नहीं समझा। पारो के दिमाग मे कई सवालात आये–उसने दिनेश को सुई निकालने से क्यो इन्कार कर दिया? क्या दिनेश रेखा को स्वर्ण पदक देना चाहता है? क्या दिनेश को उसका रिश्ता किसी गैर के साथ मजूर है? अन्त मे पारो ने निश्चय कर लिया कि वह दिनेश के इनाम अपने पास नहीं रखेगी।

शाम को दिनेश ने खाना नहीं खाया। पारो ने बहुत चाहा पर न जाने उसका साहस कहाँ चला गया था और वह दिनेश को खाने के लिए कुछ भी न कह सकी। रामू काका ने बात रखली। वे खाना लेकर रामू के पास गये और बोले "दिनेश बाबू, सोचा कि आज का खाना मैं ही आपको खिलाऊं।" दिनेश ने खाना रामू काका के हाथ से लेलिया और उसे खाने लगा। जब दिनेश ने खाना खा लिया तो रामू काका उठ खड़े हुए और हाथ जोड कर दिनेश से बोले–"दिनेश बाबू हमसे या पारो से कोई भूल होगई हो तो क्षमा करना और कभी मेरी जरूरत पड़े तो मुझे एक चिट्ठी लिख देना बस फिर तो मैं पानी भी यही आकर पीऊंगा।"

पारो एक गठरी लेकर बाहर आगई। उसके हाथ मे एक जाना-पहिचाना डिब्बा था जिसमे वह दिनेश के इनाम रखती थी। दिनेश भी अपने कमरे से बाहर निकल आया और पारो की तरफ आगे बढा। दिनेश ने पारो के पास जाकर अपनी जेब से एक डिबिया निकाली और उसे आगे करके बोला, "पारो, इस स्वर्ण पदक को भी अपने पास रखलो। शायद इस पर तुमसे ज्यादा किसी और का अधिकार नही है। मेरा मतलब है

# पाकिस्तान मुर्दाबाद

प्रेमपाल शर्मा

ठक् ठक् रात के अंधेरे में बैसाखी की आवाज गूज रही थी। सड़क सूनसान थी, जिसके आस पास अभी खोपड़ियाँ और टांगों की हड्डिया कहीं-कहीं बिखरी पड़ी थीं। एक कम्बल, लालटेन लिये चला जा रहा था, उस कम्बल के नीचे केवल एक टांग और बैशाखी दिखलाई दे रही थी। ठक् ठक् हथौड़े से कील ठोकने की आवाज, दोनो आवाजें आपस मे गडमड हो रही थीं, दूर कोई कुत्ता रो रहा था। एक खोपड़ी बैसाखी से टकराई, लालटेन ज़मीन पर रख कम्बल झुका और खोपड़ी को ध्यान से देखने लगा, मानो अन्दाजा लगा

रहा हो, खोपड़ी मर्दानी है या जनानी। सामान्य से बड़ी है ना
किसी बुद्धि-जीवी की खोपड़ी होगी। वैसे युनिविसिटी नजदीक
पता प्रोफ़ेसर रफीक की ही हो ? जो कहा करते थे 'देश बंट स
नहीं, रवीन्द्र से पद्मा अलग नहीं हो सकती। धान के खेतों
बालों में आज भी 'सोनार तरी,' सुनाई देती है। वह उस
चूमना चाहता है। पर ख्याल आता है किसी पाकिस्तानी
सकती है वह घृणासे उस पर थूकता है, एक पैर का जूता उ
पर मारता है और पैर की ठोकर से उसे दूर फैंक अत
अनुभव कर वह फिर चल पड़ता है। ठक् ठक्......

वह न जाने कहां होगी ? क्या पता होगी भी
होगी, मुझ से मिले बिना वह मर भी कैसे सकती है ?
में आगया, जिसका दरवाजा जला हुआ मलवे का ढेर
पड़ी हुई, एक खण्डहर जो आठ महीने से इसके मालिकों
रहा है और आज इस खण्डहर का मालिक आया है, वह
ऐसा लगता है वह मलवे का ढेर पूछ रहा है मेरी
कहां है ?

वह और मनीषा छोटी सी गृहस्थी में कितने
काका करीम उन्हें कितना प्रेम करते थे, उसे ईद और
मोहर्रम सब याद आने लगे। याद आये उसे पद्मा
खेत और वह छोटी सी किश्ती जिस पर बैठ शाम
में तैरते हुए मनीषा और वह काजी नजरुल इस्लाम
वह दुकान जिस पर बैठकर मलमल के थान और
बेचा करता था। कितना सुन्दर था यह घर, यह
जिसमें बड़ी सुनहरी फ्रेम में जड़ा उनका रोबीला
उस फोटो के दोनों ओर लटके रहते थे मक
पर्वत के फोटो। यहीं थी उसकी बैठक यहां
कुर्सी और यहीं खाने की मेज यह मलवे पर
एक टांग, बक्सा और लालटेन। यहीं कार्नर
उसका और मनीषा का फोटो। यह जगह
बबू का फोटो रहता था। आज यह सब

बूटों वाले दरिन्दे उसके मन और मकान, दिल और दूकान सबको उजाड़ कर चले गये। मकान का मलवा उसकी आंखों को और उदास बना देता है। उसे लगता है उसका दिल और बड़ा होता जाता है और उसमें खड़ी है पांच फुट तीन इन्च लम्बी गहरी छरहरी मनीषा, गुलगुले गुलाबी सुनहरे बालों वाले मुस्कराते बबलू को लिये। दूर कोई सियार हुआहुआ करने लगता है। उसका दिल छोटा होता होता शून्य में बदल जाता है। न *मनीषा है, न बबलू न वे बीते हुए दिन। बस एक अयन कम्बल, वैसाखी* और लालटेन।

उस अंधेरी रात को जब वह और मनीषा छत पर लेटे भाई मुजीब की गिरफ्तारी के बारे में बात कर रहे थे और एक पल को देश के बारे में छोड़ जवानी के मधुर क्षणों का सद्‌ ˙˙ ˙ खर्र खरर पर सड़क जीप दौड़ती जा रही थी। उसने अचकचा कर छत पर से ही देखा। जीपों के पीछे *फौजी बूटों का काफला भयावनी आवाजें पैदा कर रहा था। गली के कुत्ते* भौंकते-भौंकते सहम कर चुप हो गये थे। धाय-धाय दूसरे मोहल्ले, में महमूद के मकान से आग की लपटें उठ रही थी, औरतों की चीरव पुकार बच्चों का रोना, पुरुषों की कराह? वह एक पल को सुन्न रह गया। मनीषा को बिना कुछ कहे वह धुड़-धुड़ाता सीढ़ियां उतरा और अपनी रिवाल्वर को लोड कर बाहर निकलते हुए कह गया था—मनीषा चिन्ता न करना मैं जल्दी ही वापस आऊंगा।

वह वापस आया तब न मनीषा थी न बबलू न मकान, न दूकान। बस वह *था और उसकी रिवाल्वर। तीन दिन के अन्दर ही दुनिया बदल* गई थी। कहां-कहां में गुलजार बाजार अब बिल्कुल सुनसान था। उसकी आंखों से ज्वाला बरसने लगी थी। उस समय उसे बचपन में पढ़ी एक कहानी याद आई थी जिसमें हाड़ो रानी ने अपने पति को कर्तव्य पथ पर बढ़ने के लिए अपना सिर काट कर दे दिया था। और आज मनीषा ने जला हुआ मकान और अपनी अनुपस्थिति द्वारा परोक्ष रूप से कहा था 'प्रिय, सम्भवतः गृहस्थी का मोह आपको कर्तव्य पथ पर बढ़ने में विचलित करता, अब निश्चिन्त होकर आततायी का उस समय तक दलन करो जब तक यहां की हवा आजाद न हो जाय' आज राजू को अत्याचारी का दलन करते

आठ महीने हो गये थे। देश की हवा भी आज़ाद हो गई। भैया मुजीब भी आ गये। हिन्दुस्तान गये लोग लौट रहे हैं, लेकिन मनीषा न आयी। अब तो बबलू भी बड़ा हो गया होगा। शायद इतना बड़ा—वह एक हाथ जिस पर पट्टी बंधी है जमीन से कुछ ऊंचा उठाता है। अब तो वह ठुमक-ठुमक कर चलता होगा। नहीं कमजोर हो गया होगा। क्या पता सर्दी के पूरे कपड़े भी शरीर पर होंगे या नहीं। कहां वह……(बुरा विचार आते ही वह सिर झटकता है) ओ! मन बुरा न सोच वे आयेंगे, जरूर आयेंगे। वह अपना एक पैर पसारे कम्बल ओढ़े लालटेन थाम कर चटाई पर लेट जाता है। नींद आंखों से कोसों दूर। उसे अपने मुकाबले याद आ रहे हैं। अकेले में अब तक लगभग पांच सौ पाकिस्तानियों को भून दिया था। उसकी पीठ के घाव में टीस पैदा होती है और कराह उठती है और आठ घावों के निशानों पर वह गर्व से हाथ फिराता है। दाहिने पैर पर हाथ जाते ही उसका मन कसकने लगता है। उस दिन पाकिस्तानियों के खाली बंकर से भारतीय फौज के साथ वह लगातार गोलाबारी कर रहा था कि एक हथ गोला आकर फटा, और उसकी टांग उड़ गई। लेकिन दूसरी सुबह ही देश आज़ाद हो गया था। पद्मा और तेवना के बहने की आवाज़ बदल गई थी और बदल गई थी धान और पटसन के खेतों में बहने वाली हवा।

उसने मनीषा को हर जगह खोजा, पाकिस्तानियों के खाली बंकरों में हिन्दुस्तान से लौटते काफलों में, हर सड़क पर वह गुजरने वालों को देखता रहता था। न जाने कितनी बार बच्चों वाली औरतों को पुकार कर उसने शर्मिंदगी उठाई थी। हर बच्चे वाली २५ साल की औरत उसे मनीषा दिखलाई देती थी। न जाने वह कहां होगी? कैसे होगी, वह फफक कर रो पड़ता है। रो न राजू देश की आज़ादी के लिए न जाने क्या-क्या कुरबान करना पड़ता है? अन्दर से मुक्तिवाहिनी का सैनिक राजू बोलता है। उसके आंखों के सामने न जाने कितने कंकाल नाचने लगते हैं, आंख, कान, नाक से विहीन खोपड़ियां, कटे हाथ और कटे सिर वाले 'रुंड' आखों से कभी लड़कियों की गर्दनें, बाहर निकली हुई आंतें और जीभ, पागल लड़कियां पेट बढ़ाये सड़क पर चक्कर काट रही हैं।

जिनके पेट में सोनार बांगला, पद्मा का पानी, रवीन्द्र और

नजरुल का गीत नही, याह्या का बूट, हरामियो और दरिन्दो की एक पीढी बरॅबर पाकिस्तान पल रहा है। वह तिलमिलाता है, काश, युद्ध कुछ दिन और चलता, तो वह हरामियो के देश को जला कर खाक कर देता। कही, मनीषा के पेट मे भी तो·········नहीं वह चीख पडता है और एक परिन्दा पेड पर पंख फड-फड़ाता है।

राजू को लगता है, मलबे पर कोई घूम रहा है। राजू अधमिची आखो देखता है, लालटेन की बत्ती ऊंची करता है। हथौडो की आवाज अब भी आरही है। पूर्व मे लाली फैलने लगी है। सबेरा ? सहमा वह चौंक पडता है, मनीषा–बढा हुआ पेट—लेकिन बबलू ?

मनीषा आ-आ-आ-राजू चीखता है। फटे चिथडो मे लिपटी नारी घुटनो मे सिर दिये बिलख-बिलख कर रो पडती है। उसकी पीठ रह रहकर काप रही है। मनीषा, राजू लगडाता हुआ उसके पास आता है। चुप हो जा, राजू मनीषा से लिपट फफक फफक कर रोता है। नही राजू मुझे न छुओ मैं मनीषा नही, मनीषा मर गई। मैं तो व्यभिचारिणी हूँ। एक आततायी दरिन्दे, हरामी पाकिस्तानी की बनने वाली मा। राजू, सोचो-तुमने मेरी गोद मे पद्मा का पवित्र जल डाला था। रवीन्द्र और नजरुल के गीत भरे थे। बगाल का सूरज दिया था। और मैं लायी हरामी, क्रूर वहशी पाकिस्तानी मनीषा; भगवान के लिये चुप हो जाओ। मेरा बच्चा कहां है ? बबलू।

राजू उसे पाकिस्तान खा गया। मेरे बच्चे को मेरे सामने ही राजू मैं कैसे कहू, मेरा कलेजा फट जायगा। उसे सगीनो से चीर दिया गया, बूटो से रौंद मेरे सामने आग मे झौंक दिया और बदले में यह हरामी दे दिया। इतना कह वह अपने पेट पर हाथ मारती है। मैं इसे देखना नहीं चाहती राजू। यह दरिन्दा है ? मेरे पेट मे एक अजदाह पल रहा है जो मेरी अंतडियो और मुझे खाये जा रहा है। राजू, मैं मर जाऊंगी लेकिन पाकिस्तान को जन्म नही दूंगी। तुम पवित्र हो, तुमने बगला देश की रक्षा की और मैंने उसकी हत्या। तुमने पाकिस्तान को दफनाया है और मैं उसको जन्म दे रही हूं। मनीषा फिर रोने लगती है भगवान के लिए बस करो, मनीषा विश्वास रखो तुम्हारे पेट में याह्या का अन्याय नहीं

# मरे हुए आदमी

मुरारीलाल कटारिया 'मौजी'

विक्षुब्ध मन, रूक्ष और अस्त-व्यस्त केश; मुर्झाया चेहरा, चोली के जीर्ण भागों से दृष्टव्य क्षत-विक्षत अंग ! एक ओर के स्तन से टपके रक्त से सना चोली का भाग; अब सूखकर कड़ा-सा हो चला था ! नर-आदमखोरों का वह भी शिकार बनी थी। वह निरुद्देश्य भटक रही थी; अपनी दोनो बाहें लटकाये, सिर झुकाये ! (शायद; वह अब कभी भी सिर ऊंचा न कर पाये !) आखों में आसुओं की अविरल धारा बहाती, तो कभी व्योम में झांकती; चीखती-चिल्लाती; छाती कूटती रह जाती !

वह चली जा रही थी, छिपे-छिपे उस ओर जहा गिद्ध मडरा रहे थे ? वह ठिटक कर खड़ी हो गई ! लाशें सड़ रही थीं; गिद्ध भी उकता गये थे इतना मांस खा-खाकर ! फिर भी नरभक्षी मानव का मन अभी तक प्यासा था; निर्दयी था ! वह खो गई खोये हुये सुख के अन्त:स्थल में…

'उसका पति डाक्टर था; मिलनसार, सहृदयी, मानवीय सेवाओं के मूल्यो का पारखी ! उन दोनों के मध्य विहंसता एक सुत था ! भरा पूरा; सुख-समृद्धि मे लहलहाता हुआ एक सुन्दर घर था ! लेकिन…ताना-शाह पाकिस्तानी शासकों की बर्बर सेना ने दमन-चक्र के बहाने मन में छुपी हुई हवस प्रकट करना शुरु कर दी ! फूट पड़ी उनकी कुत्सित वासना निरीह-नारियो की इज्जत पर !!… उसके पति को किस प्रकार निर्दयता से चीर · ! फिर उसको घसीटने लगे ! वह चीख पड़ी थी, छाती से चिपटे-बच्चे को जब उन दैत्यो ने छीन कर फेंका, दूसरे की ओर, दूसरे ने तीसरे की ओर ! वह उनके शिकजों से बालक को छुडाने को झपटी कि बालक अगले सैनिक के हाथो मे बिलखता हुआ होता और वह स्वयं दैत्य की बाहों की जकड़न में ! छुडाती आगे बढ़ती, लेकिन बालक फिर से आगे के सैनिक-दैत्य के हाथों मे और वह……! आखिर बालक का बिलखना एक चीत्कार के बाद शान्त हो गया, जब घेरे के अन्तिम सैनिक ने उसे संगीन की नोक पर भेला ! वह झपट पड़ी थी उस निर्दयी को नोचने, पर सभी ने उसे……! जब वह होश में आई, तो उसका सब कुछ लुट चुका था। क्रूरो ने उसके स्तन का अंश काट बालक के मुंह मे लगा-कर, मकान की जीर्णता पर उपहास करने वाले तड़ित की नोक पर लटका रखा था। वह उसकी ओर बढ़ी थी कि अभी तक अतृप्त कुछ दैत्यों की पिपासा ने पुन: बेहोश कर दिया ! ……वह उठी; लेकिन अब बालक की लाश भी वहा न थी।'

बीते सुख के ध्वंस पर अब वह चीख भी न पायी; होंठ सूख गये थे, गले मे काटे से चुभ रहे थे ! वह इन सड़ती लाशों के मध्य बालक के अवशेषों को ढूंढ रही थी। पर वहां थे वो भी ? इतनी लाशो में कैसे पहचाने ? फिर पहचानने की आवश्यकता भी क्या थी ? अन्य लाशें ही कौन गैर थी, भाई-बहिन, पड़ौसी, बंगला-वासी ! फिर भी उस ओर

चल पड़ी जिस ओर एक गिद्ध नन्हे बच्चे के ऊपर मंडरा रहा था। शायद खाने को या फिर उसकी रक्षा को ? वह बालक के पास पहुंची, बालक का रक्षक देख प्रथम रक्षक ने प्रस्थान किया ! घायल बालक उसका ही बगवासी था ? उसने हृदय से गुल को लगाया था कि गुल की पखड़िया खिर उठीं ! वह चीखकर उस मृत बच्चे को अपनी छाती से चिपटा कर भाग खड़ी हुई ! भागती ही रही हताश-सी, निरुद्देश्य; इधर से उधर !···
आज उसके चेहरे पर ताजे फूलों-सी मुस्कान उभर उठी थी, जब उसने पाकिस्तानी वर्बरों की शक्ति के दर्प को उखड़ते देखा ! और सुना, उनको भारतीय वीरों के सामने हथियार डाल देने को ! वह हर्ष के मारे चीख उठी। आखों में अनगिनत बूंदें झिलमिला उठी ? लेकिन कुछ क्षण बाद ही, अपने उभरते हुए पेट पर नज़र पड़ते ही वह सिसक उठी और अपना अन्त करने को अपना सिर पटकने लगी कि वीर मुक्तिवाहिनी के एक वृद्ध सिपाही ने ऐसा करने से रोका ! वह वहां से भाग खड़ी हुई, जीर्ण ओढ़नी का पल्लू मुंह मे दबाकर।

वह अब शहर की गलियों मे भटकती, पागलो की तरह बकती, कभी अपने जीर्ण भवन की ईंटो को उठा कर गले से लगाती, तो कभी गगन-भेदी चीत्कारों से मानवीय पशुता को ललकारती और अपने बढ़ते गर्भ को कूटती ! कभी रुखे बालो को नोचती, तो कभी चेहरे को लहूलुहान कर देती।

अपनी जैसी न जाने कितनी अबलाओं को वह लुटते देखती, फिर भी ध्वंस बगला देश को नर-पिशाचों की रक्तपिपासा से मुक्ति पाकर उसके मुख से विजय-गीत मुखरित हो उठते ·········!

आगे बढ़ते कदम रुक गये ? एक मकान के चारों ओर लोगों का हुजूम देखा। सभी चिल्ला रहे थे, 'यही है वह पाकिस्तानी सेना का एजेंट। वहशियों की तरह युवतियों के सतीत्व को वेचने वाला ! बांगला देश के साथ गद्दारी करने वाला ! यह बचने न पावे, इसकी बोटी-बोटी चीलो की गिद्धो मे बाँट दो !'

वह हतप्रभ सी खड़ी रही, देखती रही ! मकान के बायीं ओर जिस ओर वह खड़ी थी, भीड़ भी न थी, नवयौवना खिड़की को बन्द करने

भारतीय सैनिकों की कुर्बानी भी रंग लायीहै। बदले की भावना की एक ता
में रख छोड़ो, क्योंकि मेरे लोग वापस आ नहीं सकते ? टूटी चूड़ियाँ जु
नहीं सकती। भंग सनीरव मये·········।

वह आगे कह न पायी ! तमतमाया शरीर, चेहरा सब पहूहा
करने लगा। अभी तक के विद्रुपीरल के गुण लुप्त होने लगे। वह बा
सोचने लगी, बढ़ने गर्भ को कूटने लगी। फिर आँसूओं की झड़ी पहने
मुँह में जीर्ण-शीर्ण पल्लू दबाये वह भाग खड़ी हुई।

उसकी आवाज गूँजती रह गई-मरे हुए आदमी वापस नहीं मि
सकते ·········मरे हुए आदमी······।

—•—

# शिक्षक की अमूल्य निधि

सीताराम स्वामी

घटना इस वर्ष के फरवरी मास की है। राजस्थान के अराजपत्रित कर्मचारियों की हड़ताल का पाँचवाँ दिन था। हम अध्यापक गण सदैव की भाँति निश्चित समय पर विद्यालय के सामने एकत्र हुआ करते थे। विद्यार्थी-गण भी शाला में समय पर आ जाते और प्रार्थना करके घर लौट जाते। एक दिन मैं सदैव की भाँति अपने साथी अध्यापकों के साथ विद्यालय भवन के बाहर सड़क पर खड़ा था। विद्यार्थी विद्यालय से घर लौट रहे थे। सहसा एक अल्प वयस्क विद्यार्थी हमारे पास आकर खड़ा हो गया और उदास-सा होकर पूछने लगा,

मास्टर जी आप हड़ताल क्यों कर रहे हैं ? फोरन ही मेरे एक साथी अध्यापक ने उत्तर दिया, "पेट के लिए। हम भूखे है। सरकार से रोटी मांग रहे हैं।"

उत्तर सुनते ही बालक का भोलापन भीतर ही भीतर रो उठा। वह समझ बैठा मेरे गुरुजी वास्तव मे पाँच दिन से भूखे है । उसने पुन: पूछा–'आप सचमुच भूखे है ?'

मेरे साथी ने पुनः उसी लहजे मे कहा–हां भूखे है। तभी तो वेतन वृद्धि की माग कर रहे है। विद्यार्थी शीघ्र ही किसी निर्णय पर पहुच चुका था। उसने अपनी जेब से एक रुपया निकाला और अपने गुरुजी को भेंट करता हुआ बोला–मास्टर जी यह रुपया लीजिये और इसकी पूरिया लेकर खा लीजिये।'

मेरे साथी ने पुन: कहा–'वत्स ! एक रुपये से क्या हो ? मैं अकेला नहीं हूं। हम सब इतने लोग भूखे हैं। फिर हमारे बाल बच्चे भी हैं। मैं अकेला ही पेट कैसे भर लूं ?'

बालक बोला–"मास्टर जी मेरे पास एक ही रुपया है। इस मास के जेब खर्च मे से 'सचयिका' में जमा कराने के लिए मैंने एक रुपये की बचत की है। आज जमा कराने के लिए ही मैं इसे स्कूल लाया था। आप यदि भूखे हैं, तो इसे लेकर जरूर भूख मिटा लीजिये।"

हम सब अध्यापक भोले-भाले बालक की बात सुन कर आत्म विभोर हो गये। उसके अबोध हृदय से निस्सरित उन बोलों ने हम सबका मन मोह लिया। हम सोचने लगे–हम ठीक हैं, या इस बच्चे के भोलेपन की सहानुभूति या हमारी पेट की आवश्यक माग ?

—०—

# शिक्षक को अमूल्य निधि

सीताराम स्वामी

घटना इस वर्ष के फरवरी मास की है। राजस्थान
के अराज पत्रित कर्मचारियो की हड़ताल का
दिन था। हम अध्यापक गण सदैव की भाँति
त समय पर विद्यालय के सामने एकत्र हुआ करते
द्यार्थी-गण भी शाला में समय पर शाला आते और
करके घर लौट जाते। एक दिन मैं सदैव की
अपने साथी अध्यापकों के साथ विद्यालय भवन के
सड़क पर खड़ा था। विद्यार्थी विद्यालय से घर लौट
। सहसा एक अल्प वयस्क विद्यार्थी हमारे पास
खड़ा हो गया और उदास-सा होकर पूछने लगा,

मास्टर जी ग्राप हड़ताल क्यों कर रहे हैं ? फौरन ही मेरे एक साथी ग्रध्यापक ने उत्तर दिया, "पेट के लिए । हम भूखे है। सरकार से रोटी मांग रहे हैं।"

उत्तर सुनते ही बालक का भोलापन भीतर ही भीतर रो उठा। वह समझ बैठा मेरे गुरुजी वास्तव मे पाँच दिन से भूखे है । उसने पुनः पूछा–'ग्राप सचमुच भूखे हैं ?'

मेरे साथी ने पुनः उसी लहजे मे कहा–हाँ भूखे हैं। तभी तो वेतन वृद्धि की माग कर रहे हैं। विद्यार्थी शीघ्र ही किसी निर्णय पर पहुच चुका था। उसने ग्रपनी जेब से एक रुपया निकाला ग्रौर ग्रपने गुरुजी को भेंट करता हुग्रा बोला–मास्टर जी यह रुपया लीजिये ग्रौर इसकी पूरियां लेकर खा लीजिये।'

मेरे साथी ने पुन कहा–'वत्स! एक रुपये मे क्या हो? मैं ग्रकेला नहीं हू। हम सब इतने लोग भूखे हैं। फिर हमारे बाल बच्चे भी हैं। मैं ग्रकेला ही पेट कैसे भर लूं?'

बालक बोला–"मास्टर जी मेरे पास एक ही रुपया है। इस मास के जेब खर्च मे से 'संचयिका' मे जमा कराने के लिए मैंने एक रुपये की बचत की है। ग्राज जमा कराने के लिए ही मैं इसे स्कूल लाया था। ग्राप यदि भूखे हैं, तो इसे लेकर जरूर भूख मिटा लीजिये।"

हम सब ग्रध्यापक भोले-भाले बालक की बात सुन कर ग्रात्म विभोर हो गये। उसके ग्रबोध हृदय से निस्सरित उन बोलों ने हम सबका मन मोह लिया। हम सोचने लगे–हम ठीक है, या इस बच्चे के भोलेपन की सहानुभूति या हमारी पेट की ग्रावश्यक माग ?

—o—

# एक बीमार गन्ध

◘

जगदीश उज्ज्वल

रजनीश की बीमारी बढ़ती गयी ! मधु की घबराहट भी बढ़ती गयी। रजनीश का प्रेम ज्वार शान्त हो गया था। एक विचित्र कसक ने उसे बीमार कर दिया था। वह अपने मित्र मुकेश को धोखा देकर मधु को ले आया था अपने पास मुकेश ने मधु की प्रसन्नता के लिए उसे आबाद होने दिया ! वह पिकु में खोगया ! किन्तु मधु रजनीश मे अपने को लय नहीं कर सकी ! प्रतिपल उसका अहम् बदलता गया और उसका नारीत्व मरता गया ! रजनीश की आँख लग गयी ! वह अतीत की विभिन्न मीनारों में शरण तलाश

करने लगी ! उसे याद आया—

रात्रि के नौ बजे बस वहाँ पहुँची ! मधु को लगा उसे किसी गहरे गड्ढे मे उतार दिया गया हो । उसे एक विचित्र सी गन्ध का एहसास होने लगा । सामान के साथ वह सुरेश के पीछे पीछे चल रही थी ।

टॉर्च की रोशनी मे मकान उसे एक पिंजड़ा सा लगा । कमरा खोल सुरेश ने बत्ती जलादी । मधु को लगा जैसे कमरे की प्रत्येक वस्तु उस पर अट्टहास कर रही है । उसके माथे पर हजारो घनो की चोट सी गिरने लगी । रेडियो, पंखा, मेज, अलमारी मे सजी तस्वीरे ! कप, प्लेट, बर्तन सभी मिल उसका उपहास करने लगे । उसे लगा जैसे वह किसी फैंकी गई जूठी पत्तल खाने को मजबूर करदी गयी है । ३ वर्ष का पिंकू अपनी मा को याद करने लगा ।

पापा मेला घोला भी मम्मी ले दिया त्या ?

और मधु को लगा—उसे विद्रोह कर देना चाहिए था । क्यो उसने सुरेश जैसे विधुर से शादी हो जाने दी । एक विद्रोह सुलगने लगा अन्तर मे अनायास ही । उसके मन के प्रत्येक कोने मे जगमगाया एक तीखा दर्द—गहरा और गहरा ।

उसे कमरे की वस्तु यहाँ तक कि दीवारों मे भी एक विचित्र गन्ध महसूस होने लगी । उसे लगा ममता के स्पर्श की छुअन सभी वस्तुओ पर बेहद चमकदार है ! अमिट है । किसी भी वस्तु को हाथ लगाते हुए उसे डर-सा लगने लगा ।

इधर सुरेश भी अपने को मुक्त नही कर पारहा था ! उसे भी एक विचित्र दर्द ने जकड़ रखा था ।

चाय बनालो सुधा !

जी बनाती हूँ ।

स्टोव की आवाज मे उसे कुछ शान्ति मिली । अब उसे अपने हृदय की धड़कन साफ नही सुन रही थी ! रात्रि को ही उसने कप प्लेट तीन बार धोए फिर भी उनमे से निकल-निकल कर एक कसीली-सी गन्ध

जमती गयी यहाँ तक कि उसके मस्तिष्क में भी समा गयी !
:हर, उतार मानों फाड़ हुई चद्दर बिछाई ! तकिये का
! लैंप की धीमी रोशनी में भी रेडियो कवर बदल डाला।
रास्ते की थकान है ! सोयोगी नहीं क्या ?
पा··········
सोच रही हो मधु ?
कुछ नहीं !
क्षमा न कर सकोगी ? मैं सहज नहीं हो पा रहा हूं ! प्रयास
स्वयं ही लज्जित कर रहे हैं आप ! मैं सोच रही थी आप
नहीं पा रहे। कमरे में प्रवेश करते ही आपके चेहरे पर
गई है मुझे यही दहशत कमरे की प्रत्येक वस्तु पर नजर आ

! तुम्हें निराशा हुई ! मुझे बहुत दुख है। अब तो······।
भी खूब है ! मैं ठीक हूं ! ममता की ममता पूरे कमरे में
। आपको इतनी अच्छी पत्नी··········।
। भी मधु !

सोने में चिल्ला पड़ा। मम्मी··········चाकलेट नहीं लाये
ड़ी और पिंकू की ओर बढ़ी किन्तु एक गन्ध ने उसे भाग
दया।

ोज वह प्रत्येक वस्तु बदल-बदल कर अपने तरीके से सजाने
ी पुराने एक सन्दूक में भर दिये और नये काम में आने
र सफेदी करवादी गयी। एक-एक वस्तु बदल कर मधु उस
चाहती थी जो उसके मस्तिष्क में गहरे धस गयी थी।

। का कोई चिन्ह वह देखने का साहस नहीं जुटा पा रही
ल दी गयी फिर भी पिंकू की आवाज में, सुकेश के स्पर्श में
ाती। और वह बीमार गन्ध उसे तोड़ने लगी। वह टूटने
र सुनती फिर भी वह गन्ध से दूर नहीं भाग सकी। आज

ति–चार

ही बाजार से पिंकू के ६ सूट ले आयी थी। सुकेश के सभी पुराने सूट, टाई, और रूमाल एक बड़े बक्स में बन्द हो गये थे। उसे ऐसा करने में खुशी की एक क्षीण चमक-सी नजर आती पर सुकेश की अंगुलियों में, उसके नाखूनों में उसे वही परिचित गन्ध आती।

पिंकू बोलता तो उसे लगता-ममता दौड़ कर आ रही है और वह अभी पिंकू को लेकर उड़ जायगी। ऊपर शून्य में······दूर बहुत दूर······।

सुकेश का साथ वह भोग नहीं पाती, उसे दोनों के बीच वही गंध सर्पिनी की तरह फुंकारती-सी लगती।

अनजाने ही वह गन्ध उसके रोम-रोम में रमती-गयी। एक के बाद एक परत जमती गई खून में। पर वह अपने को मुक्त नहीं कर सकी। पिंजड़े की मैना शलाखों से प्यार नहीं कर सकी।

और एक दिन ·····*उसका विद्रोह जागा*····· । *सुकेश को*···· पिंकू को··· ····।

*मधु से आगे नहीं सोचा गया। एक बड़ी-सी बूंद उसके गाल से* होती हुई सुकेश के माथे पर गिर पड़ी और उसे अहसास हुआ इस आंसू *की बूंद में भी वही गन्ध आ रही है। वही बीमार गंध।* और वह एक बार फिर छटपटा उठी।

---

# शेर और खरगोश

▣

ओम अरोड़ा

आखिर जंगल मे प्रजातन्त्र समाप्त हो ही गया और एक शेर डिक्टेटर बन बैठा। डिक्टेटर बनते ही उसने जंगल के छोटे जीवों को खाना शुरु कर दिया। जो भी सामने आता उसे खा जाता। चीते, तेन्दुऐ, भालू आदि जो बड़े थे और खाये नहीं जा सकते थे, उनको उसने जंगल की जेलों मे बंद कर दिया। वैसे तो सभी जानवर शेर से परेशान थे लेकिन भेड़िये, सियार और लोमड़ी सबसे ज्यादा दुखी थे। क्योंकि प्रजातन्त्र मे अपनी योग्यता के बल पर वे सबसे ज्यादा मजे मे रहे थे। उनके दुःख का एक कारण यह भी था

कि उन्होने ही प्रजातन्त्र की जड़ें खोखली कर शेर को डिक्टेटर बनने मे सहायता दी थी और अब शेर उन्ही को खा रहा था।

अपने बचाव का कोई हल निकालने के लिये एक दिन भेडियो, सियारो और लोमड़ो ने एक गुप्त मीटिंग की। उन्होंने एक एक प्रतिनिधि भेडो, बकरियो, हरिनो व खरगोसो आदि का भी ले लिया ताकि जो निर्णय सभा मे हो उसे सारे जगल में घोषित किया जा सके। लेकिन इन प्रतिनिधियों को भेडियों ने चेतावनी दे दी कि वे सभा मे ज्यादा बकबक न करें। सभा में सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि शेर के पास बारी-बारी से प्रतिदिन एक जानवर भेजा जाय। एक भेड़ ने डरते-डरते उठकर पूछा कि बारी का निर्णय कौन करेगा ? सभापति भेडिये ने उत्तर दिया कि भेडों को इस बात की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है यह कार्य भेडियो का है। भेड बेचारी चुप हो गई।

वे शेर के पास गये। शेर को प्रस्ताव पसन्द आया इसलिए उसने इसे मान लिया। बारी तय करने का काम एक सियार को सौंपा गया। प्रजातन्त्र के जमाने मे यह सियार, रगे सियार के नाम से प्रसिद्ध था। इसने जगल के सभी जानवरो की एक क्रमानुसार सूची तैयार की। सूची तैयार करने मे किसी प्रकार का पक्षपात नही बरता गया लेकिन नाम ऊपर नीचे करने का अधिकार सियार ने अपने पास सुरक्षित रखा।

क्रमानुसार जगल का एक जानवर प्रतिदिन शेर के पास भेजा जाने लगा। शेर के पास केवल भेड, बकरिया, हरिन और खरगोश आदि ही जाते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि भेडियो, सियारों आदि का सूची मे नाम ही नही है। स्वयं शेर को भी इस बात पर आश्चर्य हुआ। उसने सियार को बुलाकर उसका कारण पूछा। सियार बोला-'महाराज जब से आपने राज्यभार संभाला है, जंगल मे भेड़िये और सियार बचे ही नहीं। आपकी सारी प्रजा भेड़ बकरी बन गई है। जो थोड़े बहुत भेड़िये और सियार बचे है, वे अवश्य समय आने पर आपकी सेवा मे प्रस्तुत किये जायेंगे।' शेर को कुछ शक तो हुआ लेकिन घर बैठे शिकार आते रहने के कारण वह आलसी बन चुका था। आलसी जीव को न्याय-अन्याय की चिन्ता कम

सताती है इसलिए वह चुप हो गया।

एक दिन एक खरगोश की बारी आ गई। यह खरगोश प्रजातंत्र के जमाने में पत्रकार था। वह शेर के पास जाने के लिए घर से तो ठीक समय पर चला लेकिन रास्ते में उसकी प्रेमिका मिल गई इसलिए उसे देर हो गई।

जब वह शेर के पास पहुंचा तो शेर पहले दिन का बचा हुआ बासी मांस खा रहा था। उसने क्रोधित होकर खरगोश से विलम्ब का कारण पूछा। खरगोश पत्रकार रह चुका था इसलिए उसने तुरन्त बहाना बनाया–महाराज क्या बताऊं? रास्ते में मुझे एक शेर मिल गया। उसने धमकाकर मुझसे कहा कि मैं उसका 'इन्टरव्यू' लू और उसे किसी समाचार पत्र मे छपवाऊं। वह शेर जंगल में फिर से प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहता है।'

डिक्टेटर शेर, प्रजातन्त्रवादी शेर का नाम सुनकर आग बबूला हो गया। वह प्रजातन्त्र के नाम को ही जंगल से मिटा देना चाहता था। उसने खरगोश को आज्ञा दी कि मुझे तुरन्त दूसरे शेर के पास ले चलो।

खरगोश शेर को अपने साथ लेकर एक कुएे के पास पहुंचा और उसने कहा कि प्रजातन्त्रवादी शेर कुए के अन्दर है। शेर ने जब कुए मे झाक कर देखा तो हंसते हुए बोला–कहां है शेर? यहा तो मेरी परछाई है?'

खरगोश ने कहा–'महाराज, यह आपकी परछाई नही है, यह एक डिक्टेटर की परछाई है और आपको इससे डरना चाहिये क्योंकि डिक्टेटर को उसकी परछाई ही खा जाती है।'

शेर को बात समझ में आ गई इसलिए उसने जंगल छोड़ कर भाग जाने का निश्चय कर लिया लेकिन जाने से पहले खरगोश को खा गया।

शिक्षा–छोटों की अकल का लाभ बड़े लोग उठाते है।

—०—

# इन्तजार

◻

दयावती शर्मा

कल्पना ने कितने ही उगते छिपते सूर्य के दृश्य देखे थे पर आज का छिपते सूर्य का दृश्य उसे बहुत दूर परे की घटना को याद दिलाने में समर्थ क्यों हो गया।

शाम हो चली थी। थकी-सी कल्पना ने अस्ताचल की तरफ नजर डाली। सूर्य की लाल किरणें क्षितिज के बहुत से हिस्से को लाल किये हुए थी। सूर्य उदास-सा डूबने का उपक्रम कर रहा था। कल्पना देखती रही, देखती रही, तब तक देखती रही जब तक सूर्य अस्त न हो गया। धीरे-धीरे अन्धकार की अदृश्य किरणें बढ़ने लगी। अन्धकार शनैः शनैः बढ़ गया। आस-पास की

चीजें कम नजर आने लगी। पर कल्पना फिर भी खड़ी रही अपनी जगह स्थिर प्रतिमा की तरह।

वर्षों से वह अपने प्रश्न का उत्तर ढूंढने में लगी है। कितनी ही सन्ध्याएं उसने अपने मूक प्रश्न के हल मे लगाई है। कितनी ही चांदनी रातें नहर-तट पर बैठ कर अपने प्रश्न के हल मे बिताई है। कितनी ही अन्धकारमयी रातें गिन कर बिताई है उसने अपने एक प्रश्न के हल में, पर आज तक वह उसे सुलझा नहीं सकी है। उसकी हर घड़ी इसी चिन्तन में बीतती है, इसी आशा पर उसने कितने ही दफा दिन मे अपने प्रश्न को दोहराया है शायद कहीं समाधान हो जाय उसके प्रश्न का। पर वह हर घड़ी, हर जगह, निराश ही रही है, फिर भी उसका मूक प्रश्न हर वक्त उसे याद रहता है। वह उसके पीछे ऐसे लगी है मानो वह उसके जीवन का सर्वस्व हो।

कल्पना अन्धकार मे खड़ी अपने प्रश्न को दोहराने लगी। उसे याद आ गया अपना वह प्रश्न जो उसने किया था अपने स्वामी से जाती दफा युद्ध की ओर। शाम का झुटपुटा था। बड़े से शहर की बड़े से घर में वह बहू बन कर आई थी। अभी एक हफ्ता ही बीता था वह अपने घर वालों से परिचित भी न हो पाई थी। पति के सामने भी जाने मे अभी वह झिझकती थी। उसके लिए वहां का सब कुछ नया था। रह-रह कर उसे अपने उस मकने घर की याद आती थी जिसमे कितनी ही सन्ध्याएं अपने बहन भाईयों मे खेल कर बिताई थी। एक हूक उठती थी उसके हृदय में। उसे सब कुछ भूल जाता था जब वह अपने पति के सामने होती और जो कुछ कहने को मुखरित होते। तभी कल्पना शर्माई-सी, सकुचाई-सी, दबती भी बढ़ती की ओर। तभी उसके स्वामी जो कुछ कहना चाहते न कह सके। और हां, याद आया तुम्हारे लिए कहानी की किताब लाया हूं। अच्छी है। मैंने पढ़ी और देखी है। देखो, यह है। और वह पुस्तक देकर चले गए। और कल्पना अपनी कमजोरी पर पश्चाताप करने लगी। क्यों आती है उसे शर्म? क्यों नहीं वह उनसे खुल कर बात कर सकी? क्या नहीं वह उनकी बातियों को सुनी कर देती? क्यों वह हर बार उनकी इच्छा का खून देखती है? आज वह यही सोचते हुए अपनी नई पुस्तक पढ़ने में मग्न थी

हो जाती थी। उसे पता नहीं रहता कब उसके स्वामी आकर खड़े हो गये है उसके पीछे। कल्पना एक लम्बी सी अंगड़ाई लेकर उठती है अपने दृढ़ निश्चय को दोहराती-सी। आज चाहे कुछ हो मैं उनसे जरूर बोलूगी अपने से शब्दो से वह उतनी नही चौंकी जितनी इस लिये कि उसके दिल का राज़ उसके स्वामी ने सुनलिया है। वह झिझकी और सम्भलकर खड़ी हो गई। उसे ऐसा लगा मानो वो कुछ कहना चाहते है। वह प्रश्न सूचक दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। यह क्या? आप रो रहे है! लज्जा को त्याग कल्पना ने बड़ी-बड़ी आसू की बूदो को अपने रूमाल मे समेट लिया। कितनी शुभ घड़ी थी यह उसके लिए। उसे रोमांच हो आया। इतने नजदीक से उसने अपने स्वामी का कभी अनुभव नही किया था। वह कब तक खड़े रहे यह कल्पना न जान सकी। तभी उसे लगा मानो वो फूट-फूट कर रो रहे है। वह चौक कर दूर हट गई। उसे दुःख हुआ। पश्चाताप हुआ। शायद स्वामी उसके ढग से दुखी होकर रो रहे हैं। उसने क्षमा-प्रार्थना की कोशिश की पर शब्द मुँह मे अड़े से रह गये।

उसके मनोभावों को समझ कर वो जल्दी से अपने आपको सभालते हुए कहने लगे—कल्पना मैं तुम से बहुत खुश हू ! अपने आपको कितना सौभाग्यशाली समझता हूं। पर मुझे दुःख है मेरा यह सुख, मेरी कल्पना की यह दुनिया अधिक समय तक मुझे सुखी नही बना सके गी। कल्पने, अगर मैं यह जानता कि तुम्हे छोड कर मुझे इतनी जल्दी युद्ध की तरफ जाना होगा तो मैं कदापि शादी न करता। तुम्हारी आजादी को कभी न खरीदता। पर कल्पने तुम अब भी सन्तुष्ट हो, अब भी अगर मुझे भुलाकर सुखी रह सको तो रहना; इससे मेरी आत्मा को दुःख नही बल्कि सुख—ही मिलेगा। कहते-कहते फिर उनका गला भर आया। पागलसी कल्पना ने सब सुना और समझ लिया। रोती हुई अपने स्वामी के पैरों पर गिर पड़ी कहने लगी-आप क्या कहते है, कल्पना स्वयं की है।

वह हमेशा अपने स्वप्न को याद करती जीवन भर तुम्हारा इन्तजार करेगी अगर इस जन्म मे मिल गये तो अच्छा है वरना तुम्हे क्षितिज के उस पार अनन्त लोक मे मिलेगी। मुझे एक आदेश दे जावो जिसके सहारे मे अपने दिनों को बिता सकू।" तभी उन्होने कहा-अच्छा तो अपने

भाया के मत जाना, यहीं रह कर मेरा इन्तजार करना।' और
गये अपना आदेश देकर। कल्पना इन्तजार करती रही जीवन के
इसी इन्तजार में। उसके इन्तजार की हर घड़ी में उसका यह प्रश्
है—क्या उसके स्वामी फिर आकर देख सकेंगे कि कल्पना ने कैसा
किया उनका रह–रह कर उसका प्रश्न दिमाग में टकराता है—
उसका सच्चा इन्तजार है? फिर उसके स्वामी नहीं आये। किवा
टक–राहट हुई तो कल्पना, कल्पना जगत से निकल कर वास्तविक
आ गई। रात के दस बजने लगे थे। बड़ी, सुनसान छत पर खड़ी
ने देखा, चन्द्र हंस रहा है तारागणों के साथ और वह इन्तजार में
शायद कोई आ जावे। उसके इन्तजार की कितनी रातें हंसते हुए
देखी हैं, कितनी संध्याएं छिपते सूर्य ने देखी हैं, कितनी रातों को,
प्रश्न को हल करने में बिताया है। पर यह हमेशा ही निराश रही।
वही पुराना नियम चलता रहता है और इन्तजार का सिलसिला·····
उसके दिमाग में पति के शब्द गूंज उठते हैं—यहीं रह कर मेरा इन
करना।

# बहाव

▣

सावित्री रोहतगी

क्या मैं वही हूँ जो देख रही हूँ ?

हाँ, नही।

नहीं, हाँ।

ये क्या हाँ-नही लगा रखा है ?—मैं कुछ दर सोच कर अपने से पूछती हूँ। एक बार अपनी अन्तरात्मा में डूब कर देखती हूँ। फिर वही जाना पहचाना आभास होता है। कुछ-कुछ तो लगता है,

पर कोई आवाज कहती है—नही यह भ्रम है।

दूसरी आवाज पहली का विरोध करती है—तुम वही हो जो तुम्हे आभास हो रहा है। तुम्ही हो जिसने

पने अन्तर में अपने 'मैं' को जन्म दिया। जो आज तुम्हारे ही………

पच्चीस साल पीछे जैसे अतीत मे मुझे कोई ढकेल देता है। दस ाल की उम्र की एक लड़की अती मेरे सामने उभर आती है, जिसकी मा से तीनसाल का छोड़कर हमेशा के लिये अलग हो गई। उसे याद नही सकी मां कैसी थी। बहनो ने बतलाया कि वह तुझे कलेजे से लिपटाये हती थी, क्योंकि वह जानती थी कि उसे कैंसर है, और वह ज्यादा दिन जन्दा नही रहेगी।

वह छोटी लड़की क्यो सकुचाई-सकुचाई-सी रहती थी? दूसरी डकियों की करह उसमें चंचलता क्यों नहीं थी? अपनी एकान्तिकता खोई-खोई सी, वह घर मे रहकर भी जैसे अलग-अलग थी-बोझिल-सी ता क्यो? क्या वह जानती थी कि उसे किसी चीज का अभाव है? ा वह और हीं कुछ सोचती थी?

उसकी खुशी का दायरा छोटा होता जाता है। वह सिकुड़ती ती है।

तो क्या वह लड़की मैं हूँ? ऐसा क्यो लगता है कि मैं एका-एक ज भी अपने बच्चों से, पति से यहाँ तक कि स्कूल के साथ की अध्या- ायों से कट जाती हूं। एक अजीब-सी उदासीनता, अलगाव और न्यता का बोध किसी गैस की तरह अन्दर उठता है और दिमाग पर छा ता हैं। मैं सब जगह होकर भी कही भी नहीं होता हूं-शायद किसी भी ।

वह दस वर्ष की छोटी लड़की अती सोलह वर्ष की होकर मेरे ने खड़ी हो जाती है। पड़ोस के अस्थाना बाबू की लड़की नन्दनी उसकी ती है और उसकी क्लास फैलो। नन्दनी उसको बहुत चाहती है और भी उसे कम नहीं चाहती है। नन्दनी गोरे रंग की पतली छरहरी की। उसे उस वक्त कभी-कभी लगता था कि वह नन्दनी से खूबसूरत नहीं है! नन्दनी उसमे कितनी खुल कर के 'आती थी लेकिन वहां वह कंजूस रह जाती। नहीं-नहीं कंजूस नहीं। अती चाहती है कि नी होकर अपने दिल की हर घुटन को नन्दनी के सामने प्रकट कर

लड़कियां उस लड़की को चिढ़ाते हुए कहती है 'चिर वियोगिनी यशोधरा है बेचारी।' मस्ती ऐसे ही कितने प्रकार की फबतियां दोषारोपण के रूप में सुनती है और अपनी मजबूरी और अवशता पर खुद हंस लेती है।

पर क्या वही लड़की मैं हूं? अचानक मेरे मस्तिष्क में सवाल उठता है—क्या तूने ही अपने अन्दर 'मैं' को एक बच्चे की तरह दुलार कर नहीं पाला है.........?

मैं शादी होने के बाद ससुराल में आयी थी। घर में खुशियां थीं, रिश्तेदारों का उत्साह था, और नन्दो के लिये भावुक खुशी। लेकिन मुझे इस वक्त भी लगा था, उस खुशी में कहीं न कहीं उदासी है; खुशकी है। क्या वह मेरे अपने मन की थी? मैंने पहिचानने की कोशिश की कि ये उदासी जो सारे रंग पर नीरस छाया की तरह लटकी हुई है या मुझसे जन्मी हुई थी या वातावरण ने ही उसे पैदा किया था? मैं नहीं पहिचान सकी थी। मेरा व्यवहार कभी अपनों के साथ घुला-मिला होता, कभी मैं फिर उस नन्दनी की सहेली की तरह सबसे कट कर ऊपर-ऊपर तैरने लगती। इसके शिकार वह भी होते जो मेरे पति बनने की सामाजिक उपाधि पा चुके थे।

फिर वही सोलह वर्ष की लड़की मस्ती दसवीं की परीक्षा के लिए तैयारी कर रही है। उसे चार कापियों की जरूरत है। वह सोचती है क्या वह पिताजी से कापियां लाने को कहे? या अपने छोटे भाई की कापियां ले ले। वह रोयेगा तो पिताजी को पता चल ही जायेगा और घर में कापियां भी आ ही जायेंगी। पर वह ऐसा क्यों करे? पिताजी से ही क्यों न कहे? लेकिन फिर कोई अनजाना संकोच उसे पिताजी से न कहने के लिए बाध्य कर देता है। वह भाई की कापियां ले लेती है।

वह लड़की मैं ही हूं ना। पच्चीस साल की पूर्ण युवती। कल अचानक उनकी दृष्टि मेरी धोती पर पड़ गई जो दो जगह से फटी हुई थी। इसे मैंने सी रखा था। वह बोले—तुम्हारी धोती फटी हुई है। क्या दूसरी धोती नहीं थी पहनने के लिए?

*वह दफ्तर से आकर बैठे थे। वास्तविकता यह थी कि सबमें मेरी* घर की धोतियां फट चुकी थीं, लेकिन मैंने उनको दुखी न करने का ख्याल

# किसी सुबह के लिए

भगवतीलाल व्यास

पृथ्वीराज नगर और पुरानी लाट जाने वाली सड़क पर एक गाँव है विष्णुपुरी। विष्णुपुरी के ठीक सामने कुछ चाय की दुकानें है। एक दो दुकाने दरजी और धोबी की भी है। इन दुकानो और विष्णुपुरी के बीचों बीच सडक है। सुबह होते न होते शरीर मे रक्त की प्रवाह की तरह बसें, स्कूटर टेक्सियाँ, कारें, रिक्शा और साइकलें इस सडक पर दौडने लगती हैं और बडी रात तक दौड़ती रहती है। काफी रात गये यह ताँता कमजोर पड जाता है। शायद सडक हाँफने लगती है, सवारियाँ ऊँघने लगती हैं और धीरे धीरे

गाँव सो जाता है। सड़क फिर भी बीच—बीच में किसी कटरखने कुत्ते-सी जाग पड़ती है। भोर होती है.........। चाय की दुकानों पर भट्ठियों में कोयला डाला जाता है। सूर्य की पहली किरण भट्ठियों से उठते धुंए और धुंए से भी गहरे मैल सनी कमीज पहने लड़के पर एक साथ पड़ती है। दुकान मालिक खटिया पर बैठा, हुक्का गुड़गुड़ा रहा होता है जबकि भट्ठी सुलगाने से लेकर प्रारंभिक ग्राहकों को साथ चाय पिलाने का काम करने वाला लड़का अपनी नाक सुडसुड़ाता है। आँखों में जमा रात भर के कीचड़ को कमीज की मैली बाँह से साफ करता है और मौका पड़ने पर अपने मालिक की ओर से ग्राहकों से झगड़ा मोल लेता है। वह अपने नमक का हक अदा करता। मालिक ऐसे क्षणों में उससे बहुत खुश होता है। उसके हाथ से छिटक कर काँच का गिलास फूट जाने पर कुछ गालियाँ टिका देता है। वह झुँझला उठता है कि उसके पास गालियों का स्टॉक इतना सीमित क्यों है क्योंकि हर बार ऐसी घटना होने पर उसे उन्हीं गालियों से काम चलाना पड़ता है। कभी-कभी गालियों से जो नहीं भरता तो एकाध हाथ भी जमा देता है। इतना सब कर लेने पर भी मालिक भुगतान के समय फूटी हुई गिलासों की कीमत काटना नहीं भूलता घोड़ा घास से यारी करे तो खाये क्या! यह सब करते समय मालिक को कोई अफसोस नहीं होता बल्कि ऐसा भाव उसके चेहरे पर आता है मानो वह उस लड़के पर उपकार कर रहा हो। वह समझता है कि इस तरह उस लड़के को सावधानी रखने का सबक दे रहा है जो उसके भावी जीवन के लिए बहुत आवश्यक है। ऐसे हर मौके पर लड़का खीसें निपोरकर हँसने लगता है और कई टूथपेस्टों के शानदार विज्ञापनों का मजाक-सी उड़ाती हुई उसकी पीली बत्तीसी दिखायी देने लगती है। •••

मेरा परिचय इस लड़के से बहुत पुराना नहीं, फिर भी परिचय कहना गलत होगा। घनिष्ठता भी नहीं कह सकता। परिचय और घनिष्ठता के बीच की कोई चीज है जैसे उसके मेरे बीच। मुझे देखते-ही वह चाय का पानी रख देता है। उसे बताना नहीं पड़ता कि चाय में शक्कर कितनी होगी और पत्ती कितनी! सुबह दो कप एक साथ पीने की मेरी आदत भी वह जानता है। अब मैं अपने पहले कप की चाय लगभग समाप्त कर रहा

होता हूं तभी वह दूसरे कप के लिए पानी रख देता है। कुदर्शन होने के बावजूद भी मुझे उसके मैले हाथों से चाय लेनी पड़ती है। उसके हाथ अक्सर कोयले की कालिख और मैल से सने होते हैं और चाय देते समय गीली प्लेट में अंगूठे का निशान बन जाता है। अंगूठे की आकृति और उसमें की बारीक रेखायें स्पष्ट दीख पड़ती हैं। काश, मैं हस्तरेखा शास्त्री होता और अंगूठे की इन रेखाओं को देख कर उसका भविष्य जान पाता। लेकिन उसकी आवश्यकता नहीं है। बिना हस्त-रेखा पढ़े ही मैं कह सकता हूं कि इसका भविष्य क्या होगा। इससे पहले जो लड़का यहां आया था, उसका क्या हुआ, मैं अच्छी तरह जानता हूं। हमारे देश में भविष्य व्यक्ति का नहीं हुआ करता, वह वर्ग विशेष का होता है। बरसों का उठना-बैठना है इस दुकान पर। जब वह चाय मेरे सामने रख जाता है तब मैं बड़ी देर तक प्लेट में बने उस निशान को देखता रहता हूं और निश्चय नहीं कर पाता कि यह निशान कोयले की धूल के कारण बना है या उसके हाथ के मैल के कारण। मन की शुचिता को सुरक्षित रखने के लिए मान लेता हूं कि कोयले का ही होगा। उस निशान को लोगों की आंख बचा कर मिटा लेता हूं। कौन सुबह-सुबह झगड़ा खड़ा करे।

यह सब होते हुए भी मैं चाय यहीं पीता हूं। यदि यहां से महानगर की तरफ थोड़ा चहल-कदमी करूं तो सराय के पास अच्छी दुकानें मिल सकती हैं। अच्छी से मतलब है सफ़ाई वाली। एक दो बार मैंने ऐसा किया भी था पर जाने वहां तृप्ति क्यों नहीं मिली। सच पूछिये तो मुझे विष्णुपुरी के आस-पास बिखरा वातावरण बड़ा प्रिय है। महानगर से मेरा प्रथम परिचय भी इसी स्थान से प्रारम्भ हुआ था लेकिन यह कोई खास कारण नहीं है प्रियता का। वातावरण अपने आपमें बहुत बड़ा कारण होता है। यह जगह मुझे रेगिस्तान में 'आसिस' की तरह लगती है। महानगर में जो भीड़-भड़क्का है, परिवहन की बसों में अपरिचित शरीर की अयाचित रगड़ है, जल्दबाजी है, फरेब है, मुखौटे हैं, स्कर्ट, साड़ियां, लिपस्टिक और जूड़े में सिसकते हुए फूल हैं, एक आपाधापी है, अन्धी दौड़ है, आत्मीयता के नाम पर रटे हुए वाक्य हैं, कारोबार के नाम पर ठगी और हस्तकौशल के नाम पर जेब कतरापन है, वह सब यहां नहीं है यद्यपि यह भी महानगर

का ही एक हिस्सा है। लेकिन महज़ यही कारण नहीं है मेरे इस स्थ
लगाव के। और भी हैं। आप जान जाएंगे।

मैं एक सुबह का ज़िक्र कर रहा था वैसे सुबह हर रोज़ हो
पर कभी-कभी यह होना बड़े अनायास ढंग से महत्वपूर्ण हो जाता है
याद करने से मन में जाने क्या-क्या अजीबोगरीब होने लगता है। ऐसी
थी वह एक सुबह। मेरा कमरा उस विशाल अहाते में बनी एक शान
बिल्डिंग की तीसरी मंज़िल पर था जहां से मैं आकाश की ओर अवाधि
निगाहों से ताकती पुरानी लाट को हमेशा देख सकता था। दूसरी खि
से विदेशी दूतावासों के भवनों को और निकट ही स्थित किसी बड़े मंस
के स्टाफ-क्वेर्ट्स को भी देख सकता था। यहीं से मुझे मुख्य सड़क
यातायात दिखाई पड़ता था। मगर उस रोज़ सब कोहरे में डूबा थ
कोहरे का रंग मुझे बड़ा रूमानी लगता है। शायद वह होता भी है। का
देर तक अपने कमरे की बालकनी से इस दृश्य का स्वाद लेता रहा।
तय किया कि आज चाय पीने देर से जाऊंगा और काफी देर तक बै
रहूंगा। कभी-कभी निरुद्देश्य वहां बैठ कर सड़क से गुज़रती भीड़ को नि
रना भी अच्छा लगता था और फिर कोहरे ने इस 'अच्छा लगने' को दुगु
कर दिया था।

उस दुकान से झगड़े की आवाज़ आ रही थी। झगड़ा डबल रोट
को लेकर शुरू हुआ था। सभी झगड़े रोटी को लेकर शुरू होते हैं। महा
नगरों में रोटी का प्रचलन कम है इसलिए डबल रोटी को लेकर शुरू हुआ
यह झगड़ा स्वाभाविक ही लगा। मैं दृष्टामात्र था। उस लम्बी तगड़
देहातिन किस्म की युवती के हाथ में डबल रोटी का खुला पैकेट था और
वह तमतमाये चेहरे से हरियाणवी में न जाने क्या-क्या कह रही थी दुकान
मालिक से। उसका कहा हुआ मैं अधिक नहीं समझ पा रहा था पर यह
तय था कि वह झगड़ने की भाषा थी। झगड़ा और प्रेम की भाषा सार्व-
भौमिक रूप से एक ही होती है क्योंकि यह शब्दों से कम प्रकट होती है,
आंगिक क्रियाओं से अधिक। उसका कहना था कि रोटी सड़ी हुई है और
उसे उसके पैसे वापस मिलने ही चाहिएं। दुकान मालिक खुली हुई रोटी
लेने को तैयार नहीं था। दोनों अपनी-अपनी जगह पर सही थे और झगड़ा

खत्म नहीं होना चाहता था।

वहीं बैठे दो-चार लोगों का ध्यान औरत की बातों पर कम किन्तु उसके शरीर पर अधिक था। उसने चांदी के आभूषण पहन रखे थे। ऊंचे घाघरे से उसकी सुडौल पिण्डलियां झांक रही थीं। दोनों पिण्डलियों पर लता की आकृतियां गुदी हुई थीं जो ऊपर तक चली गई थीं। देखने में बहुत सुन्दर नहीं होते हुए भी गौर वर्ण, कसे हुए अंग-प्रत्यंग और चेहरे की ताजगी उसे विशेष आकर्षण प्रदान कर रहे थे। जितनी देर वह झगड़ा करती रही लोग अपनी चाय को लम्बी कर-कर के पीते रहे। लड़के के हाथ यन्त्र-चालित से चाय बनाते और गिलासों में उड़ेलते रहे पर निगाह रह-रह कर उसके पुष्ट शरीर पर फिसलती रही। एक अन्य ग्राहक की दृष्टि भी वहीं जमी थी जो नाक-नक्श से नेपाली और वरदी से चौकीदार लग रहा था। दोनों दृष्टियों में बड़ा अन्तर था। इसे दृष्टि का अन्तर कहा जाय या और कुछ, यह प्रश्न मैं आप पर छोड़ता हूँ।

काफी बहस और हील-हुज्जत के बाद मामला आधी रोटी के पैसे लौटाने पर तय हुआ। औरत चली गई। उसकी चाल में विजय का उल्लास था। अब तक और ग्राहक भी जा चुके थे। मुझे आज कोई जल्दी नहीं थी अतः इतमीनान से अखबार पढ़ने लगा। सुर्खियां भी पूरी तरह न देख पाया होऊंगा कि दुकान मालिक ने महत्वपूर्ण सूचना देने के अंदाज में कहा–'आप नहीं जानते इसे साहब, बड़ी तेज तर्रार औरत है। हमारे उधर की ही है। इसका आदमी डिरेवर है और एक दूसरी औरत के चक्कर में फँस गया गया था। तब यह गाँव में रहती थी। खेती बाड़ी है उस डिरेवर की वहाँ। उड़ते-उड़ते डिरेवर के इश्क की चर्चा इसे मालूम हुई तो यहाँ भाग आई। मगर तब तक सब चौपट हो गया था।"

मैंने सोचा, ठीक ही तो है। जो औरत एक रोटी के लिये सुबह-सुबह इतना झगड़ा कर सकती है वह अपने पत्नी-पद के लिये भला क्या नहीं कर सकती। लेकिन मेरी धारणा के विपरीत दुकान मालिक ने कहा-"यहां आकर पहले तो इसने अपने आदमी से खूब मिन्नत की कि वह उस औरत से अपना रिश्ता तोड़ ले। डिरेवर ने रिश्ता नहीं तोड़ा पर उस रात खूब पीकर इसकी हड्डियाँ तोड़ने पर उतर आया। चीख-

पुकार सुन कर लोगों ने बीच-बचाव किया नही तो मर ही जाती।"

महज जिज्ञासावश मेरे मुँह से निकल गया—"उसके बाद ?"

"उसके बाद क्या होना था साहब। इसने अपने मरद और उस औरत की शादी करवादी मगर एक शर्त पर कि आगे से वह किसी और औरत को बुरी नज़र से नहीं देखेगा और वह खुद भी गाँव जाने के बजाय यहीं रहेगी। अब यह उन दोनों की चाकरी करती है। वे हुक्म चलाते हैं और यह बजाती है। इसके मरद को चाय के साथ रोटी चाहिए नाश्ते मे सो यह मुँह अँधेरे आकर ले जाती है फिर उन दोनो के जगने से पहले चाय रोटी का नाश्ता लगा देती है ?"

'अच्छा, बड़ी दिलेर औरत निकली यह तो।'—मैंने आश्चर्य प्रकट किया।

दुकान मालिक ने कहना जारी रखा—"लोगों ने इसे बहुत कहा कि कोरट मे अरजी दे दे तो उसके मरद का सारा इश्क हवा हो जायगा और सुख से रह सकेगी। मगर इसने एक न सुनी उल्टे कहने लगी किशन जी भगवान के कितनी रानियाँ थीं। मेरे मरद के तो दो ही है और फिर उस बेचारे ने देवता की आन लेकर कह दिया है कि अब किसी औरत की तरफ नही देखेगा। फिर मैं क्यों जाऊँ कोरट-फोरट। जग हँसाई मे क्या रखा है। जरूरत पड़ी तो खुद ही निपटलूँगी। तुम लोग अपना काम देखो।' समझाने वाले यह दो टूक बात सुन कर मुँह लटकाये लौट गये थे।

दो चार नये ग्राहक आ गए थे। दुकान-मालिक उनसे बात करने लगा। मैंने घड़ी देखी। काफी समय हो गया था। • • •

अब मुझे उस लड़के को कोई नाम दे देना चाहिये जिसे मैं चाय की दुकान वाला लड़का कहता आया हूँ। यद्यपि मैं नहीं जानता कि उसका नाम क्या था पर अब मैं उसे रामू कहूँगा। वैसे हर सामान्य कहानी का नायक रामू, श्यामू, मोहन, सोहन जैसा कुछ होता आया है पर ये नाम काफी पुराने पड़ गये हैं शायद। लेकिन रामू से अधिक आधुनिक नाम देने के पक्ष में भी मैं नहीं हूँ। यह नाम याद की सुविधा के लिए

रखा है वरना मेरा काम तो बिना नाम के ही चलता था। जरूरत पड़ने पर मैं उसे 'मुन्ने' कह कर पुकारता और अपने लिए ऐसा उम्दा संबोधन सुनकर वह गद्-गद हो जाता था। लेकिन यह कई वर्षों पहले की बात है। अब मैं अगर उसे 'मुन्ने' कहूँगा तो वह नाराज हो सकता है। उसका मालिक बता रहा था कि इधर कुछ दिनों से उसमें काफी प्रौढ़ता आ गई है। अब वह 'राजू' की सीमा लांघ चुका है और राजेन्द्र कहलाना पसन्द करता है। विशेषतः उस दिन से जब वह उस अकेली रहने वाली लड़की के मकान पर दूध पहुँचाने गया था।

और काफी देर बाद दुकान पर लौटा था। उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था और रह-रह कर पसीने की बूंदें झलमला उठती थीं। उस दिन के बाद अब वह रात को दुकान बढ़ाने के बाद अक्सर गायब रहता है और काफी रात गये लौट कर दुकान के बरामदे में पड़ जाता है।

इस बीच वह बहुत कुछ बदल गया था। अब वह पहले की तरह मैला नहीं रहता। तीखी नोक वाले बूट और सस्ते ही सही 'टेरीकॉट' के कपड़े पहनता है। जब ग्राहक नहीं होते तो कुर्सी पर पसर कर टांगें टेबल पर फैला देता है और अपने दोनों हाथों की कंघी-सी बना कर उन पर सिर टिकाते हुए देर तक सीटी से फिल्मी गीतों की धुनें निकालता रहता है। हाँ, अपने काम में वह पहले की अपेक्षा काफी चुस्ती दिखाता है जिससे ग्राहकों की संख्या कुछ बढ़ी ही है। दुकान मालिक उससे खुश है और उसके अपटूडेट पन से थोड़ा दबता भी है।

मैंने इस बार उसे देखा तो सहसा विश्वास नहीं हुआ कि यह वही अपना चिर परिचित 'मुन्ने' है। लेकिन उसने मुझे देखते ही पहचान लिया और उठकर चाय बनाने लगा। मैंने देखा वह इन चार बरसों में काफी लम्बा हो गया है। अब मैं उसे 'कुदर्शन' कहने की हिम्मत भी नहीं कर सकता। वह सचमुच 'राजू' से राजेन्द्र बन गया है। लेकिन राजेन्द्र नाम में भी उसे कुछ बचकानेपन की बू आती है। पैसे देने के लिये जब एक रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ाते हुए कहता हूँ—"लो राजेन्द्र, अपने पैसे काट लो" वह मेरे हाथ से नोट ले लेता है मगर उसकी मुख-भंगिमा से ऐसा लगता है कि वह चार साल बाद भी अपना नाम उसी रूप में सुन

कर प्रसन्न नहीं हुआ है। लगभग अप्रसन्नता का भाव चेहरे पर लाकर वह पैसे लौटाते हुए कहता है—"अब मैं राजेन्द्रसिंह हो गया हूँ······आर० सिंह। थोड़े में पुकारना चाहें तो 'राज' कह सकते हैं आप।" और वह ठहाका मारकर हँस पड़ा। मैं भी जल्दी में था। पैसों को बिना गिने ही जेब में डालकर कमरे की राह ली। ०००

मेरा काम ही ऐसा है। बरसों के अंतर से तो कभी वर्ष में कई बार मुझे इस महानगर में आना पड़ता है। आज फिर इस महानगर में आया हूँ। ठहरने का ठिकाना वही है। कमरे में सामान रख कर आदत के मुताबिक चाय की दुकान की ओर चल देता हूँ। सुबह की हलकी-हलकी रोशनी में देख रहा हूँ कि महानगरों में परिवर्तन की गति बड़ी तेज है। पोस्टर शायद ठीक ही कहते हैं कि देश में तेजी से विकास हो रहा है। इसमें पोस्टरों की गलती कुछ भी नहीं। बेचारे पोस्टरों का देश तो ये महानगर की सीमाएं ही हैं न। बहुत कुछ बदल गया है। चाय की दुकान पर पहुँच कर देखता हूँ मिस्टर आर० सिंह की जगह दूसरे लड़के ने ले ली है दुकान मालिक नमस्कार करता है। मेरी निगाहों में छिपी राज सम्बन्धी जिज्ञासा उसकी अनुभवी आँखें भाँप लेती हैं और वह हमेशा की तरह रहस्योदघाटन के अंदाज में बताने लगता है—"वह जो अपना पुराना नौकर राज था न साब, उस अकेली रहने वाली लड़की के साथ भाग गया है।"

इसी बीच नया लड़का चाय रख गया था। मालिक ने आगे बताया—"वह जो ड्रिरेवर था ना अपने उपर का, एक रात बहुत देर से उस लड़की के कमरे में से निकला था। उसे इस तरह दबे पाँव निकलते देख लिया था उसकी देहातिन बीबी ने।" मेरी स्मृति में डबल रोटी के लिए झगड़ने वाली उस औरत का चित्र घूम गया।

मालिक ने कहना जारी रखा—"दूसरे दिन उस ड्रिरेवर की लाश पुलिस ने उसी के घर से निकाली थी। और उस देहातिन ने कबूल कर लिया था कि उसने अपने मरद को मारा है। पुलिस द्वारा कारण पूछने पर उसने कहा था कि उसके मरद ने उसके साथ विश्वासघात किया

है। इससे ज्यादा उसने कुछ नहीं बताया।"

"उसी रात से भारना राज और वह लड़की कहीं गायब है।" कहते-कहते दुकान मालिक रुग्रांसा-सा हो ग्राया था।

मुझे लगा कि एक ग्रौर सुबह का खून हो गया है ग्रौर बिना कुछ कहे पैसे टेबल पर रख कर भारी मन से ग्रपने कमरे में लौट ग्राया।

# ठिठोली

◘

धर्मेन्द्र पाल सिह भदौरिया

देवती बड़गूजरों के आधिपत्य में थी। पहाड़ी गढ़ राजौर उनकी राजधानी थी। राजौर की सीमाओं पर जंगल था। जिससे निकल कर कुछ जंगली शूकरों ने राजौर के गावों में ऊधम मचा रखा था। बड़गूजर अधिपति के अनुज ने जब यह सुना तो उनका युवक हृदय जंगली शूकरों का शिकार करने के लिये व्यग्र हो उठा। उन्होंने तुरन्त अपने साथियों से परामर्श कर एक योजना बनायी। तदुपरान्त भोजन करने के लिये महल में आकर रानी से कहा—"भाभी, मैं जंगली शूकरों के शिकार के लिये जा रहा हूँ" अतः शीघ्र-ही

खाने का प्रबन्ध कर दो ? बाहर खड़े मेरे साथी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

रानी बड़गुजर अधिपति की स्मृति मे डूबी हुई थी। जो किसी कार्य से अनूपशहर मे सेना लिए हुए बैठे थे। उनकी अनुपस्थिति मे बड़गूजर अधिपति का युवक अनुज राजौर की देखभाल करता था। इस समय देवर का आना भौजाई को अखरा। उसने देवर की इस व्याकुलता को देख व्यंग कसा-'शूकर का ही तो शिकार करना है ! पर जल्दी ऐसी मचा रखी है मानों जयसिंह के साथ समर करके उनके हृदय मे भाला मारने जा रहे हो।'

भौजाई का व्यंग उसे बड़ा गहरा कुरेद गया। नसो मे बिजली-सी दौड़ गई। मस्तिष्क मे विचारों के झंझावात उठ खड़े हुए। उथल-पुथल सी मच गई। क्षण भर क लिए उसके ज्ञान चक्षु खुल गये। एक दृश्य उसके सामने उभरा—आमेर के आदि पुरुष दूले राय का ! जिसने नरवर से निकल कर यहां सबसे पहले बड़गूजरों के धौसा नामक स्थान पर अधिकार किया था। पर युवक का राजपूती हृदय व्यंग की चोट को सह नही सका। उसका सारा शरीर अपमान की पीड़ा से जल उठा। क्षण भर में ही युवक का सोया हुआ राजदर्प जाग उठा। त्योरियां चढ़ गयीं। नेत्र रक्तिम हो उठे। व्यथा से पीड़ित-सा हो वह बोला—'भाभी तुमने मुझे सचेत कर दिया है। मैं सब का बदावर अपने इष्टदेव की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि जब तक आमेर राज्य के राजा जयसिंह के हृदय में भाले का आघात न कर लूगा तब तक आपके हाथ से भोजन ग्रहण नहीं करूंगा।' यह कहता हुआ वह राजपूत युवक बिना खाये वापिस लौट पड़ा।

'अरे-रे-रे-रे ......' रानी ने अट्टहास कर उसे रोका और कहा—'तुम हमेशा बात का बतंगड़ बना लेते हो। मेरे मानस मे ऐसी कल्पना तक नहीं है। मैंने तो यूं ही ठिठोली की थी। लो अभी खाने का प्रबन्ध किये देती हूं खाकर जाओ।'

'नहीं भाभी यह मेरे क्षत्रियत्व का प्रश्न है। आन की बात है। भला मुंह से निकली हुई बात भी कभी वापिस लौटती है। जो कह दिया उसे करूंगा। मुझे आशीर्वाद दो ताकि प्रतिज्ञा पूरी करके आपके हाथों का भोजन ग्रहण कर सकूं।'

रानी यह सुन कर सन्न रह गई, अवाक ! हतप्रभ !! उसने युवक को बहुत समझाया पर व्यर्थ ! वह चिन्ता के अथाह सागर में डूबने उतराने लगी। समस्या का कोई समाधान सम्मुख न देख कर रानीने धड़कते हृदय से युवक के शीश पर अपना स्नेहिल हाथ रख दिया और कहा–'अच्छा कुमार ! आशीर्वाद देती हूं। जाओ ईश्वर तुम्हें अभीष्ट सिद्धि दे।'

युवक ने भक्ति विह्वल हो रानी के चरणों में शीश झुकाया और बाहर आकर अपने दस शस्त्रधारी मित्रों के सम्मुख अपनी कठोर प्रतिज्ञा की घोषणा कर दी। मित्र विचार में पड़ गये। आमेर जैसे विशाल राज्य को सैन्य बल से परास्त करना राजौर जैसे छोटे राज्य के लिये कठिन ही नहीं असम्भव था। अतः उन्होंने युवक को समझाया कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता। हमें पहले अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिये पर युवक राजपूत अपनी प्रतिज्ञा से टस से मस नहीं हुआ। कुछ क्षण तक मित्रों के चेहरों पर चिन्तन की रेखाएं बनती बिगड़ती रहीं। अन्त में दसों शस्त्रधारी युवक का साथ देने के लिए तत्पर हो गये।

सब उठे, तुरन्त अपने अस्त्र-शस्त्र सम्भाले। अश्वों की वल्गायें थामी और उचक कर बैठ गये। वल्गाएं खींचते ही पानीदार अश्व अपने स्वामियों को लिए धनुष के तीर की तरह आमेर की ओर धूल उड़ाते हुए दौड़ चले। रानी का हृदय आकुल और आत्मा अशान्त थी। वह शिलाखण्ड की भांति अचल हो। प्रकोष्ठ के एक वातायन से तब तक उन्हें देखती रही जब तक वे धूल के अम्बार में लुप्त नहीं हो गये। वह भीतर ही भीतर दुखी हो रही थी।

घुड़सवार तेजी से आगे बढ़े। लम्बा मार्ग होने के कारण वे पसीने से लथपथ हो गये। पर उनके घोड़े मजबूत थे। वे अपने स्वामियों को गन्तव्य स्थान पर पहुंचाने के लिए बड़ी-बड़ी पहाड़ियों को लांघते चले गये। गन्तव्य पर पहुंच कर उन्होंने आमेर के निकट धूलकोट के पार्श्व में राजपथ पर अपना डेरा डाल दिया। और उत्सुकता से राजा की सवारी निकलने की प्रतीक्षा करने लगे। दिन बीता, सप्ताह बीता, महीना बीता, और फिर महीने बीतते ही चले गये। पर प्रतिज्ञा पूरी करने का अवसर उनके हाथ न आया। जीवन यापन के लिए साथ लाया धन शनैः शनैः समाप्त हो

गया। धन समाप्त होने पर उन्होंने अपने बहुमूल्य वस्त्र बेच दिये। वस्त्रो से अर्जित धन आखिर कितने दिन चलता, विवश होकर उन्होंने अपने प्राणो से प्रिय अश्व भी बेच दिये और फिर फाकामस्ती। युवक राजपूत की आकांक्षाओ पर भारी तुषारापात हुआ। राजा की सवारी उधर से नही निकली। वह और उसके साथी सूख कर काटा हो गये। मित्रो से यह स्थिति सहन नही हुई। उन्होने अपने शौर्य को इस भाति नष्ट करने के बजाय युवक को सलाह दी कि भूख से इस प्रकार कराह-कराह कर मरना कोई बुद्धिमानी की बात नही है। अच्छा यही है कि सुबह होते ही हम दुर्ग रक्षकों को काटते हुए सीधे जयसिंह की छाती पर चढ दौड़ें। पर युवक को यह सलाह पसन्द नहीं आई। उसने असमर्थता प्रकट की–'यह सम्भव नहीं है। पहाड़ पर सीधा सिर मारने से अपना ही सिर फूटता है। ग्यारह आदमियो का आमेर पर चढ़ाई करना सिवाय आत्मघात के और कुछ नही। हम राजा के पास पहुचने से पूर्व ही नष्ट हो जायेंगे'

दसों मित्र टूटने की सीमा पर आ गये थे। वे वर्तमान अवस्था से बुरी तरह ऊब गये थे और इससे निकलना चाहते थे। अत. उन्होने कहा–'मित्र, हम हाथ मे तलवार लेकर मृत्यु मे जूझ सकते हैं। उसकी धार पर चल सकते हैं पर हर दृष्टि से समर्थ होते हुए भी भूख से बिलख-बिलख कर स्वय को काल के विकराल गाल मे नही डाल सकते। हमे सीधे या तो जयसिंह की छाती पर चढ़ दौड़ना चाहिए या वापिस लौट चलना चाहिये। जब कभी संयोग उपलब्ध होगा तब इस ओर अग्रणी होंगे'।

पर युवक तो चट्टान की भाति अपनी बात पर अटल था। भूख उसके निश्चय को नहीं डिगा सकी। मित्रो की लाचारी देख सिर्फ एक लम्बी उसास उसके मुंह से निकली। वह एक निमिष चुप रहा फिर बोला–'निकट भविष्य मे लक्ष्य प्राप्ति की कोई आशा नहीं है अत मेरे साथ भूखे रह कर दम तोड़ना व्यर्थ है। तुम जा सकते हो। मैं अकेला ही समय आने पर प्रतिशोध लू गा। वैसे अब समय आने की सम्भावना कम है।'

मित्र निरुत्तर हो गये। निरुपाय एक एक कर सब साथी उसे भूख से जूझता छोड़ कर चले गये। पर उस साहसी युवक राजपूत ने भूख को आत्म-समर्पण नहीं किया। राठौर के घन मनाता उसे अपमान-जनक प्रतीत

हुआ अतः अब उसने अपने शस्त्र बेचने प्रारम्भ कर दिये । शस्त्र राजपू
की जान होते हैं । उन्हें बेचते समय उसका हृदय हाहाकार कर उठा । पर व
लाचार था । पहली बार उसके नेत्र आंसुओं से भीग गये ।

दिन और बीते । पर राजा की सवारी उधर से नहीं निकली । बुरे दिन जब आते हैं तो एक के बाद एक इस प्रकार आते रहते हैं कि एक सीमा में आकर समर्थ से समर्थ व्यक्ति भी बिखरने लगता है । पहला, दूसरा, तीसरा और धीरे-धीरे चौथा दिन भी बिना खाये बीत गया । चार दिन तक भूख उसके गात को भुलसाती रही । जिससे उसका कञ्चन सा चमकता हुआ तेजस्वी गात सूखकर ठीकरे-सा निष्प्रभ हो गया । गर्दन पर उभरी शिरायें और आंखों के इर्द गिर्द पड़े गोल दायरे उसकी दयनीय दशा को प्रदर्शित करने लगे । चेहरे पर किसी प्रकार का आकर्षण शेष नहीं रहा । शेष रहीं केवल जलती हुई अंगारे सी आंखें । पर प्रतिशोध की भावना उसकी चेतना पर इस प्रकार छा गई थी कि वह इसके अतिरिक्त और कुछ भी निश्चय करने में असमर्थ था ।

अब उसके पास सिर्फ शरीर पर धारण किया हुआ फटा वस्त्र, पगड़ी और भाला शेष था । पांचवे दिन जब मृत्यु उसे समूचा निगल जाने के लिए विकराल मुंह बाये निकट आई तो निरुपाय प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए अपनी पगड़ी मृत्यु के चरणों में फेंक दी । जो पगड़ी आज तक किसी के सामने नहीं झुकी थी वही पगड़ी उसने मृत्यु के चरणों में स्वेच्छा से झुका दी । वह हर प्रकार का मूल्य देकर अन्त: स्थल में गड़े शूल को निकाल फेंकना चाहता था । पर कैसे निकाले ? मन में प्रश्न उठा.........."क्या वह जयसिंह की छाती को भेद कर चौहान के आदि पुरुषों का तर्पण नहीं कर पायेगा ?" प्रत्युत्तर में उसका मन विवशता से कचोट उठा । पगड़ी फेंककर व्यथित मन से क्षुधा निवारण के उपरान्त उसने जीवन की आशा त्याग दी और वह भाला निराशा के गर्त में झूलती जिन्दगी को लिये आशाहीन सा होकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा । भूखा......प्यासा......बेसुध... ।

तभी एक दिन राजपथ [illegible] से [illegible] लगा । देखते ही देखते सम्पूर्ण राजमार्ग बहुमूल्य [illegible] [illegible] से भर गया । वह

जानकर कि आज राजा की सवारी इस मार्ग से जायेगी उसकी उखड़ी हुई आकृति पर एक अद्भुत चमक आ गई। एक विलक्षण तेज !! मुख पर एक गहरा सन्तोष प्रतिबिम्बित हो उठा। उसे लगा मानों अन्धकार मे चन्द्रिका उदित हुई हो। महीनों की साधना मूर्त होते देख उसकी संज्ञा पुनः लौट आई। नेत्र ज्योतिर्मय हो उठे। खून मे गरमाहट आई और पुनः शनैः शनैः पहले वाली अवस्था मे आने लगा। यद्यपि अब उसमे उठने की सामर्थ्य नहीं थी। भुजाओं मे इतनी शक्ति नहीं थी कि भाले का करारा वार कर सके। फिर भी प्रकृतिस्थ हो किसी प्रकार स्वय को चैतन्य कर भाले को अपनी वज्र मुष्टि मे दृढता से कस कर पकडा। फिर हृदय के स्पंदनों को संयत कर राजा की अभ्यर्थना मे खडी भीड मे आकर सम्मिलित हो गया।

कई दिनो से भूख काल सर्पिणी की भांति धीरे-धीरे उसे डस रही थी। जिससे उसका सारा शरीर शिथिल हो गया था। पैर शरीर के बोझ को सम्भालने में आनाकानी कर रहे थे। वह घोड़े की तरह कभी इस पैर को आराम देता तो कभी उस पैर को। उसकी जान बडी सांसत में थी पर मनोबल दृढ़ था। वह अपने हृदय मे चुभे शूल को जिसकी यातना से उसकी आत्मा महीनो से तडप रही थी, निकाल कर शीघ्र से शीघ्र उसे इस कष्ट से मुक्त कर देना चाहता था। सिर्फ इसी भावना ने उसमें असीम साहस का सृजन कर दिया। जिसकी प्रेरणा से प्रकृतिस्थ हो उसने राजपथ पर अपनी आंखे फैला दी।

जन समूह राजा के दर्शनों के लिये मार्ग के दोनों ओर टूट पड़ा। राजपुरुष बड़ी कठिनता से मार्ग की रक्षा कर रहे थे। सभी मार्ग अश्व की टापो से गुञ्ज उठा। आमेर नरेश का विशाल राज गज सोने चाँदी से लदा झूमता चला आ रहा था। नरेश ने तडक भडक की पोशाक पहन रखी थी। कण्ठ मे मोतियों की माला जगमगा रही थी। हाथी राजपथ की ओर बढ़ रहा था। जन-समूह मे हल चल पैदा हुई। जयकारे का शब्द हुआ, जिसकी आवाज ने युवक के श्रवण रध्रो मे गूंज कर उसकी तन्द्रा को भंग किया। जयकारे का शब्द शांत हो पाता इससे पूर्व युवक घायल व्याघ्र की भांति भीड़ को चीरता हुआ राजपथ के बीचों बीच आ खड़ा

हुआ। हाथी ठिठका। राजा सचेत हुए। अंग रक्षक तेजी से उसकी ओर दौड़े। इसी मध्य युवक ने भाले वाले हाथ को ऊपर उठाया। भाले को हाथ मे तोला। शरीर को सिकोड़ कर बाघ की भांति लचक सी और विद्युत वेग से भाले को लक्ष्य की ओर फेंक दिया। भाला तीक्ष्ण वेग से हवा में लहराता हुआ आगे बढ़ा और हौदे के बीचो बीच जाकर धंस गया।

युवक की दृष्टि हवा में लहराते भाले पर तृप्त भाव से एक निमिष को रुकी और फिर वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

---

# गलालेंग

◻

'आनन्द' कुरैशी

कहीं दूर सूरज के निकलने का आभास हुआ। उषा झटपट उसे निहारने अपना कचन-मुखड़ा लिये दौड़ी चली आई। तारक गण प्रखण्डित उषा की लज्जा न ले देख सके, वे एक एक कर व्योम मे जा छुपे। फिर सूरज भी आया। उषा का लज्जा का आवरण मानो खो गया। वही भागी-भागी धरती माँ की ओड़ में समा गई।

'दन्न्म्……' तभी राजमहलो मे छूटी तोप की गर्जना बिखर कर दसो दिशाओ मे व्याप्त हो गई। पछी दल चहचहाते हुए रात-भर का आलस त्याग उड़ चले।

अधमुंदी पलकों को झपकाते हुए अंगड़ाई ले नगर निवासी उठ खड़े हुए।

प्रातःकाल हो आया।

शाही नक्कारखाने में 'शहनाई की सुमधुर स्वर लहरी पर अपने सधे हुए हाथों से नक्कारची ने 'ताकि नाकि नाकि धिना' की चोट दी।

आज दशहरा पर्व है।

राजपूताना के दक्षिणांचल मे वागड़ प्रदेश की राजधानी डूंगरपुर की शोभा आज अवर्णनीय है। उत्सव में भाग लेने के लिए प्रदेश के चारों ओर से बड़े-बड़े ठाकुर, जमींदार और ऊँचे घराने के व्यक्ति आए हुए है।

प्रात काल होते-होते झुण्ड के झुण्ड लोगो का ताता राजमहल की ओर बंध गया।

जुलूस की तैयारियां होने लगी थीं।

दोपहर होते-होते जनसमूह राजपथ पर हिलोरें लेने लगा। सुन्दर परिधानों में सज्जित कुलवधुएं गवाक्षों, अलिन्दों में जुलूस का आनन्द लेने जमा हो आईं।

जुलूस राजपथ पर था।

आगे-आगे घोड़ों पर नक्कारे सजाये नक्कारची पीछे सजे-धजे हाथी घोड़ो की पंक्तियां, फिर चमर डुलाते कर्मचारी लाल-पीली पगड़ियों और अंगरखियों मे शोभायमान हो रहे थे। हाथियों पर स्वर्ण-जटित अम्बारियाँ चढ़ी हुई थीं। उनके पीछे घोड़ों पर पंक्तिबद्ध सेना। सेना के आगे-आगे सफेद मक्खन-सी चिकनी चंचल घोड़ी पर बैठे सरदार हसन खाँ विराजमान थे। सेना के पीछे अन्त में नागरिकों की अपार भीड़ महारावल बहादुर का जयघोष करती चल रही थी। आगे-आगे महारावल रामसिंह का गज मस्तानी चाल से चला जा रहा था। उनके पीछे प्रभावशाली व्यक्ति का एक युवक सबके आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था।

तभी उसे देख कुल कमिनियां संकेत कर उठी—'गलालैंग'।

ओजपूर्ण सुन्दर व्यक्तित्व व प्रतिभा का धनी वह युवक और कोई नहीं अलीगढ़ के पूर्विया चौहान मालसिंह का बेटा गुमानसिंह (गलालैंग) महारावल का भान्जा था, जिसने अभी-अभी यहा आकर शरण ली है। विशाल जुलूस राजपथ पर बढ़ता चला जा रहा था। उच्च अट्टालिकाओं

से झाँकती अत्यधिक प्रफुल्लित रमणियाँ उत्साहित नागरिकों को देख देखकर प्रसन्न हो रही थी।

शनैः शनैः जुलूस सभा के रूप मे आयोजित होने गंपसागर के किनारे विशाल प्रांगण की ओर बढ़ चला। ० ० ०

रात्रि का प्रथम प्रहर

महल दीप मालाओं से जगमगा रहा था चहुँओर प्रकाश विद्यमान था। विशाल कक्ष मे विराजमान महारावल मन्त्रियो, सरदारो और नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों से घिरे उत्सव का आनन्द ले रहे थे। क्रमशः गवैये, भाट, ढूजुरी आते और अपनी कला का प्रदर्शन कर पारितोषिक ले अलग जा बैठते।

सहसा भीड़ को चीर कर एक प्रतिहारी ने महारावल के सम्मुख आकर दीर्घ अभिवादन किया।

"खम्मा अन्नदाता" पीठ से एक दूत आवश्यक पत्र लेकर आया है 'आज्ञा हो' बागडाधिपति ने तत्परता पूर्वक उसे यहाँ लाने का आदेश दिया।

कक्ष मे पूर्ण शांति थी। सभी आतुरता से दूत की प्रतीक्षा करने लगे। रियासत पीठ के राव द्वारा भेजे दूत ने कुछ ही देर में भीतर आकर महारावल को सादर अभिवादन किया।

'खम्मा अन्नदाता'।

'क्या सदेस लाए हो'?

दूत ने उनकी ओर एक पत्र बढा दिया। पढते ही महारावल का चेहरा तमतमा उठा। कडाणा के परमार राव ने आक्रमण कर पीठ को लूट लिया है। परमार राव दुस्साहस की सीमा को पार कर जाएगा हमे आशा न थी। जन समूह स्तब्ध हो उठा। समस्त कलाविदों को विदा दे दी गयी।

राज्य की सीमा से यदाकदा इस प्रकार की लूट के समाचार आते थे, पर परमार राव से ऐसी आशा तो न थी।

राज्य की सीमा मे अतिक्रमण ! विचार-विमर्श हुआ। प्रतिशोध

दो-दो सेहरे होंगे-एक विवाह का दूसरा विजय का । कहकर गलालैंग तीर सा कक्ष के बाहर हो गया । ० ० ०

बीहड़ जंगल शहनाई और नक्कारों की आवाज से गूंज उठा । ऊपर व्योम शिशु तारक दल सहित बादलों की ओट से बाहर आया । नगर से दूर गलालैंग आज की रात्रि एक सुखद मिलाप व मेड़तिया कुमारी के सुन्दर मुखड़े की कल्पना में डूब गया। पीछे पालकी में बैठी मेड़तिया कुमारी उद्दाम यौवन की सुखद लहरियों में गोते लगा रही थी।

बारात पचलासे तक पहुंची भी न थी कि एक घोड़े पर सवार सरदार हसन खां ने द्रुत गति से आकर बरात के सम्मुख लगाम खेंची । घोड़ा मंथर गति से भीड़ को चीरता हुआ दूल्हे के समीप आया । गलालैंग ने घोड़ा झुक कर हसन खा को अभिवादन किया । हसन खा ने अपना मुख उसके समीप किया और फुसफुसा कर कहा-'शुभाशीर्वाद'। अपना दूसरा कर्तव्य भी पूरा करो नौ दिन आज व्यतीत हो चुके हैं। शीघ्र नगर को प्रस्थान करें, सेना कूच के लिए तैयार खड़ी है।'

गलालैंग चौंका । वह कुछ कहे इससे पूर्व ही हसन खां ने घोड़े का रुख नगर की ओर कर दिया ।

बारात को पचलासे की कोठी में रात्रि विश्राम की आज्ञा दे कुछ सैनिक सहित गलालैंग नगर की ओर बढ़ा । गलालैंग के मस्तिष्क में उथल-पुथल थी। मधुर मिलन की जो कल्पनाएँ उसने अभी संजोए रखी थी, सहसा बिखर गई । वह विचलित हो उठा उसका मन भीग आया । गलालैंग की आंखों मे मेड़तिया कुमारी नाच उठी । उसका तन बदन रोमांचित हो उठा । *यौवन की तेजस्विता तीव्रतर होने लगी, हृदय*………।

गलालैंग पागल हो उठा, तड़प कर बोला 'पड़ाव डाल दो।' सैनिक अपने सरदार की व्यथा को जानते थे। फिर रात्रि भर की बात थी, कोई जान भी न पाएगा । उन्होने चुप-चाप घोड़ों की रास थाम ली ।

गलालैंग पुनः अकेला पचलासे की कोठी की ओर मुड़ा । सिंह-द्वार पर पहुंचते ही दौवारिक ने भाला द्वार पर टिका दिया । वह बोला-'कुमार भीतर न प्रवेश करने पाएँ, यह माई सा की आज्ञा है।

माई सा, 'वे यहां कब आई ?' वह चौंका, बोला-माई सा से कहो गलालेंग आया है ।'

प्रत्युत्तर में दौवारिक ने सोने के कंगन उसकी ओर बढ़ा दिए । गलालेंग चौंका 'यह क्या है ?'

माई सा ने कहा है–ये कंगन, कुंवर आयें तो उन्हें देना । कहना अपनी तलवार इस बूढ़ी मां को दे दे, कडाणाराय के रक्त से मैं पीठ की निरीह जनता की वेदना का मूल्य चुकाऊंगी ।'

'माई सा' । गलालेंग के पैरों तले धरती डोल उठी ।

दौवारिक कहता गया । 'ये कंगन कुंवरानी साहिबा के हैं । माई-सा ने कहा है–इसे पहिन लो, तुम्हारा पौरुष पोरवान्वित हो उठेगा ।'

गलालेंग फक-सा हो गया । क्षण भर में मुड़ा और प्रातःकाल होते-होते अपने लघु सैन्य दल सहित सीधा कडाणा जा पहुंचा । नगर की सेना बाट जोहती ही रही ।

कडाणा के राव की विशाल सेना उसके सामने के लिए तैयार खड़ी थी ।

रणभेरी बज उठी । दोनों ओर से तूर्यनाद होने लगा । गलालेंग ने सीमित शक्ति के होते हुए भी जान की बाजी लगा देने का संकल्प लिया । युद्ध छिड़ गया ।

लड़ते-लड़ते गलालेंग खड्ग प्रहार से अचेत हो गया ।

सरदार हुसन खां अब विशाल सेना के साथ रणभूमि में पहुंचे, देखा विजय पताका फहरा रही है । आहत गलालेंग ने आंख भर कर हुसन खां को देखा और आंखें मूंद ली ।

दूसरा सेहरा उसके सर पर था । हुसन खां उस वीर का शव ले सैन्य दल सहित नगर आए ।

गलालेंग मर कर भी बागड़ के इतिहास में अमर हो गया । उसके यश सौरभ से दिगन्त सुगन्धित हो उठी ।

— • —

# जय चित्तौड़

◘

खेमराजसिह "पथिक"

चित्तौड़ का अभेद्य दुर्ग। चित्तौड़ के सब सैनिक सिर झुकाए बैठे हैं। भारत का महान पराक्रमी राजा अकबर अपने विशाल टिड्डी दल के समान सैनिको के साथ चित्तौड को घेरे पडा है। चित्तौड के *महाराजा उदयसिह अपनी स्त्री और दो पुत्रो के साथ* पहले ही डर कर पर्वतो की ओर प्रस्थान कर चुके हैं। किला सुनसान। स्त्रिया स्तब्ध। भविष्य मे क्या होगा इसकी सबको चिन्ता। सबके चेहरों पर भय की छाया, मौत का भय। अकबर अभी तक अपने प्रयत्नों मे सफलता *प्राप्त नहीं कर सका है क्योंकि आखिर* चित्तौड़

का दुर्ग है, हंसी खेल थोड़े ही है। किन्तु क्या यह टिड्डी दल वापस चला जाएगा? असम्भव! अकबर जैसा बादशाह और वापस जाय! सर्वथा असम्भव! तो···तो क्या पराधीनता स्वीकार कर ली जाय! एक विदेशी जाति के गुलाम बन जायें। एक यवन के आगे समर्पण! मेवाड़ भूमि को कलंकित कर दें? माता के दूध को लजा दें?······नहीं······कदापि नहीं··· ··जब तक रक्त की एक बूंद भी है ··युद्ध होगा अवश्य होगा ··! या तो मौत······विध्वंस ·····नाश या फिर विजय ·····उल्लास ····· और ·····और एक महान सम्राट की पराजय! ये थे राजपूतों के उद्गार जो किले में अकबर की सेना द्वारा घिरे हुए थे।

सब योद्धाओं के चेहरे दो मुखारविन्दों की ओर एक-टक देख रहे थे। ये थे जयमल और पत्ता······दो भाई। एक डाल के दो पुष्प। दो शरीर एक आत्मा। एक यौवन से परिपूर्ण था तो पत्ता किशोरावस्था के अन्तिम और यौवन के प्रथम चरण पर खड़ा था। किले की बागडोर दोनों के हाथ में थी। दोनों की रक्तिम आँखें केहरी के समान चमक रही थीं ·· जयमल गरज उठा ·····

'भाइयों ·····महाराज गए······अब आपके हाथों चित्तौड़ की लाज है। हम इस पावन भूमि को बचाएँ······युद्ध करें और मर जाएँ··· या एक यवन के सामने आत्म-समर्पण करके जीतेजी संसार के सामने कलं-कित होकर जिएँ। युद्ध करेंगे तो मरना अवश्य है। पराधीनता स्वीकृति पर गुलामी की जंजीरों में जकड़े देहली के कारागृहों में सड़ना पड़ेगा। अब आप ही बताएँ कि आप सब क्या चाहते हैं।'

राजपूतों की जोशीली आवाज सुनसान किले में गूंज उठी, 'युद्ध होगा · अवश्य होगा।'

पुनः खामोशी! पुनः चिन्ता! परन्तु क्यों? इसलिए कि विशाल अकबर की सेना से ये मुट्ठी भर सैनिक कैसे लोहा लेंगे? या तो मर जाएँगे······किन्तु इस प्रकार जान-बूझ कर मरना क्या उचित होगा···?

जयमल बोला—'भाइयों, मैं अच्छी तरह जानता हूं कि हम आमने-सामने युद्ध में इस विशाल सेना के सामने एक दिन भी नहीं टिक सकेंगे···।

अतः हमें किले में रहना है किले की रक्षा करनी है। जब तक दुर्ग अभेद्य है हम विजयी हैं। दुश्मन की सेना पर छुट-पुट आक्रमण करते रहना है किन्तु अपने प्राणों की सुरक्षा के साथ हम देखते हैं ये दुश्मन कब तक घेरा डालकर पड़ा रहेगा। और बन्धुओ इस दुर्ग में खाने को अन्न तथा पीने को पर्याप्त मात्रा में जल है। इस ओर से आप जरा भी चिन्ता न करें।

हर्ष ध्वनि जय रणचण्डी······जय चित्तौड़··· ···!!!

सभा विसर्जित हुई। सब चुपचाप पूर्ण सतर्कता से किले की रक्षा में नियुक्त हो गए··· ·····सब चौकस, सब सावधान·······।

रात का सन्नाटा।

मौत की सी खामोशी!!

चित्तौड़ किले को रजनी अपनी श्यामल चादर में लपेटे पड़ी है। सर्वत्र शान्ति! सब लोग निन्द्रा देवी की गोद में लेटे मधुर स्वप्नों के काल्पनिक जगत में सैर कर रहे हैं।

मुख्य स्थलों पर प्रहरी सजग एवं चौकस!

कुछ सो रहे हैं कुछ जाग रहे हैं।

उस समय किले के दक्षिण पार्श्व में एक छाया सतर्कता से आगे बढ़ रही है। इस भाग में एक चोर दरवाजा था जो शत्रु को मालूम नहीं था। पर यह छाया उसी की ओर बढ़ती जा रही थी। सहसा सामने चोर दरवाजा नजर आया·············।

हैं··········? ? ? यह क्या?

दरवाजे पर कोई मानवाकृति??

तो दुश्मन ने चोर दरवाजे का भेद पा लिया। न जाने इस छाया के साथ कितनी छायायें होंगी·······तो दुर्ग टूट गया··········सिहर उठी छाया··········।

उसने कटि से खड्ग निकाला और दरवाजे के पास वाली छाया की ओर धीरे-धीरे बढ़ने लगा। बस एक वार। सिर से धड़ अलग!! काम समाप्त!!!

पर छिप कर कायरता से वार करना धर्म होगा ?

*नहीं……आन न टूटे चाहे जान क्यों न जाए………*

तलवार दूसरी छाया की पीठ पर जा लगी…वार नहीं किया… धीरे से……कायर……तू जो भी है चुपचाप हाथ ऊपर कर ले वरना मेरी तलवार तेरे तन को दो भागों में बांटने में देर नहीं करेगी" ।

*छाया चौंकी ??*

फिर हंस पड़ी ??

"पत्ता तलवार अपनी म्यान में रख ले"

पत्ता कांप गया !! पसीने आ गए !! ये तो दादा जयमल था !!

यदि बिना बोले वार कर देता तो……ओह कितना भयंकर अनर्थ हो जाता…… ।

"दादा आप और यहां" ?

"हां पत्ता किले को देखता हुआ इधर आ निकला था" ।

"ओह । दादा तुम्हें कह कर आना चाहिए था……यदि अभी मेरा हाथ चल जाता तो…………।

जयमल मुस्करा उठा । पत्ते के कन्धे पर हाथ रखा ।

"पत्ता सब सैनिक आराम कर रहे हैं, कुछ पहरा दे रहे हैं, मैंने उन्हें जगाना उचित नहीं समझा………फिर वे यहां आते तो घबरा जाते ।……"

चौंका पत्ता,…"*ये क्यों भैया*" ?

"तुम कांप उठोगे पत्ता" ।

"मैं आपका भाई हूं दादा……मुझे काल भी समक्ष आ कर नहीं कंपा सकता" ।

*"अच्छा तो चलो ।"*

दोनों किले की दिवार पर चढ़ कर परकोटे पर आ गये । बाहर

अकबर का शिविर नज़र आ रहा था। कुछ मानव की छायाएं दुर्ग की जड़ में इधर-उधर घूम रही थी। पत्ते को आश्चर्य हुआ……।

"ये लोग परकोटे के नीचे क्या कर रहे हैं ?"

"ये लोग सुरंग उडा रहे हैं।"

एक बारगी पत्ता काँप गया। उसका साहस डगमगा गया। सुरंग यानि दुर्ग का टूटना……और फिर पराजय……ओह

"क्यों पत्ता कांप गया गया न ?"

"भय्या वास्तव में दुश्मन ने बड़ा खतरनाक कदम उठाया है।"

"हमें दुर्ग को बचाना होगा पत्ता।"

"परन्तु कैसे ?"

" अभी सुरंग बिछाई जा रही है। सुरंग में आग लगने से पहले ही दुश्मन को क्षति पहुंचाना आवश्यक है ताकि वह घबरा जाय।"

"पर सुरंग नष्ट कैसे होगी भय्या ?"

"मेरे साथ आगे बढ़ो।"

"दोनों आगे बढ़े। जयमल एक स्थान पर खड़ा होकर बोला— "नीचे देखो पत्ते……वह विशाल पत्थर।"

"वह तो देख रहा हूं।"

"यह पत्थर यदि ऊपर से नीचे की ओर गिरा दिया जाय तो सुरंग और यवन सैनिक सब नष्ट हो जायेंगे। यह ठीक सुरंग के ऊपर है।

"पर भय्या इस विशाल पत्थर को गिराया कैसे जाएगा ?"

"पत्ता ! यह पत्थर देवी कृपा से टिका है। केवल एक छोटे पत्थर की ही ओट लग रही है। यदि देवी ने हमारी सहायता की तो हम अपने उद्देश्य में अवश्य ही सफल होंगे।"

"तो ठीक है दादा……आप अपने साफे को नीचे लटकाइये… मैं जाकर कोशिश करता हूं।"

"पागल हो गया है पत्ते।…तुझे काल के गाल में झोंक दूं ये

मैं नहीं करूंगा।''''तू यहीं ठहर मैं जाता हूं" जयमल ने सर से उतारा।

"भय्या मैं आपको हरगिज नहीं जाने दूंगा। आपके कन्धे चित्तौड़ का भार है चित्तौड़ के सैनिक आपके भुजबल एवं चातुर्य निर्भय हैं......"

"व्यर्थ में समय बरबाद मत कर पत्ता......एक एक पल अमू बीत रहा है।"

"तो फिर मुझे आज्ञा दीजिए न।......"

"पत्ता! मेरी बात......"

"आपको मेरी कसम है ........लाओ लटकाओ साफा...... चला......"

"तो फिर दोनों ही चलते हैं।"

"नहीं भय्या......दीवारें सपाट हैं।......बिना खींचे हम वापस नहीं चढ़ सकेंगे और फिर, यदि मुझसे पत्थर न हिला तो आप किसी सैनिक को बुला लेना और फिर आ जाना। जयमल चुप।

पत्ता सरका......और सरकता गया......जयमल धड़कते दिल को लिए वहीं बैठ गया।

० ० ०

सप्तमी की रात थी।

चन्द्रमा क्षितिज से निकल कर अपनी क्षीण किरणें भूपटल पर फैला रहा था और मध्याकाश की ओर बढ़ रहा था और इधर पत्ता बड़े विशाल पत्थर की ओर।

नीचे सैनिकों का कोलाहल। पत्ता पत्थर के पास खड़ा था। उसने लात से उस छोटे पत्थर को हटाना चाहा जिस पर यह विशाल पत्थर टिका हुआ था।

एक......दो......तीन......चार......पर व्यर्थ। वह पत्थर टस से मस नहीं हुआ। पत्ते ने तलवार निकाल कर पत्थर की भाड़ लगाई और फिर लगाया जोर।

'तड़ाक' की ग्रावाज़ करती तलवार दो टुकड़ों में बंट गई। पत्ते के पसीना ग्रा गया ग्रब वह क्या करे······क्या जयमल भय्या को बुलवाए ······ या······

"घाँय······ऽ ऽ ऽ ऽ धाँय ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ······"

गोली चली

पत्ता गिरा ग्रौर गिरते हुए देखा कि वह विशाल पत्थर दुश्मन की सेना को लीलने चल दिया। पत्ते के चोट लगी जैसे किसी ने उसके तन को छेद दिया हो। वह उठा······फिर गिरा······ फिर उठा······फिर गिरा······फिर······ग्रौर वह बेहोश हो गया। ० ० ०

जयमल ने बन्दूक चलने की ग्रावाज सुनी ग्रौर वह काँप गया। उसकी दाहिनी भुजा पत्ता ससार से··········ऽ ऽ ऽ ऽ

वह चिल्लाया······पत्ता ऽ ऽ ऽ ऽ ? ? ?

जयमल की ग्रावाज पत्थर की गड़गड़ाहट ग्रौर ग्रकबर के सैनिकों के कोलाहल में डूब गयी······

सेना में चीत्कार, रुदन, क्रन्दन मचा था। पत्ते ने ग्रपना काम कर दिया पर वो गोली " कांपा जयमल। उसने तुरन्त पगड़ी के छोर को कंगूरों से बाधा ग्रौर सरक गया नीचे की ग्रोर। पत्थर का स्थान खाली था। एक मानवाकृति पड़ी थी। काँपते हाथ उस ग्रोर बढ़े। प्रसन्नता के ग्रांसू बह निकले। पत्ता जीवित था, केवल बेहोश। जयमल ने उसे कन्धे पर उठाया। ग्रचानक ऊपर कोलाहल हुग्रा······जयमल चिल्लाया।

"कौन है ऊपर ?"

"हम हैं सरकार," जयमल की ग्रावाज पहचान कर सैनिक बोले।

"तुम लोग सावधानी से पगड़ी को ऊपर खींचो··········सम्भल कर······"

जयमल ने फेंटे से पत्ते को पीठ पर बांधा ग्रौर कसकर पगड़ी पकड़ी। कुछ क्षणों में वो परकोटे के ऊपर था। पत्ते सहित। एक बल्लदाश लेकर·········

प्रात काल !

भानु उदित होने के लिए मचल रहा था। उषा मानों सुनह चादर ओढ़े भानु के स्वागतार्थ शीतल पवन के झोंकों को लिए खड़ी थी खग वृन्द मधुर ध्वनियां करते हुए अपने नीड़ों से दूर उड़े चले जा रहे थे

परन्तु इधर जयमल ‥ ‥

जयमल के हृदय में एक शंका थी और शंका का समाधान कर हेतु वह उसी परकोटे के ऊपर बढ़ा चला जा रहा था। एक स्थान प देखा,……चौड़ा। ……शंका सही थी ……सुरंग के टूटने व पत्थर के धमाके से परकोटे पर दरार …… ‥दरार का तात्पर्य दुर्ग ध्वंस। पराज की असह्य वेदना ने जयमल के दृढ़ हृदय को हिला दिया। जयमल चुपचाप एक भारी बोझ हृदय में लेकर सभा भवन में आ बैठा। उसने चुपचाप कारीगरों को तैयार किया और कुछ विश्वास पात्र सैनिकों को भी।…… उसने रात को परकोटे को सुधरवाने का निश्चय किया।……यह कार्य बिलकुल चुपचाप किया गया।…… ‥किसी को कानों खबर नहीं होने दी। और अकबर……

अकबर सुरंग टूटने के आघात को सह न सका वह उस दिन चुपचाप शिविर में पड़ा रहा……और चित्तौड़ में पड़ा हुआ था पत्ता……

पत्ता कैसे घायल हुआ……पत्थर कैसे गिरा……

पत्ता जब पत्थर गिराने में असफल रहा तो खड़ा खड़ा सोच रहा था कि उसी समय दुश्मन के शिविर से पत्ते की छाया को लक्ष करके गोली चली ……पर वह गोली चित्तौड़ की रक्षक बन गई……वह गोली पत्ते के न लग कर उस छोटे पत्थर के जा लगी……पत्थर टूटा और……वह विशाल पत्थर भयंकर आवाज करता सुरंग पर गिरा……और…और… उसी गोली से पत्थर उछट कर पत्ते के लगे और पत्ता घायल हो गया…… और……

०००

रात का समय……!!!

जयमल परकोटे पर मशाल लिए परकोटे की दरार को पटवा

रहा था। कारीगर काम में व्यस्त थे। किसी को कानों खबर न थी। किन्तु, सम्पूर्ण भारत को विजय करने वाले अकबर की सेना बेचैन थी। उसके सामने एक ऐसा दुर्ग खड़ा था जो अभेद्य और अटूट था। केवल यही तो एक-मात्र राज्य था जो अकबर के विशाल राज्य में सम्मिलित नहीं था।

अरे ये परकोटे पर मशाल की लौ। कौन हो सकता है?

धांय ऽऽऽऽऽऽ..............

शान्त वातावरण में गोली की आवाज गूंज उठी। सेना में हल-चल मच गई। सब तैयार हो गए। पर उधर.........

उस मशाल को लिये खड़ा पुरुष एक दर्द भरी चीत्कार करता हुआ भूमि पर आ गिरा.........

वह जयमल था, पत्ता का भाई, चित्तौड़ का रखवाला.....

°°°

चित्तौड़ चिंघाड़ उठा!

पत्ता फुफकार उठा!!

सेना ललकार उठी!!!

जौहर की ज्वाला धधक उठी!!!

नारियों की चर्बी के जलने की बू वातावरण में फैल गई।

केसरिया बाना सजा!

आज फैसला होगा!!

जय या पराजय

आज पत्ता दुश्मन के खून से तिलक करेगा। ये उसका प्रण है, ये प्रतिज्ञा है।

और क्या ... ?

पत्ता उड़ चला।.......

सेना उमड़ चली।

चित्तौड़ के किले का फाटक खोल दिया गया।.......

चीत्कार······अचानक भयंकर आक्रमण !! घबरा गयी अकबर की सेना। क्या करे ? इन स्वतंत्रता के दीवानों को कैसे रोके ?······मैदान लाशों से पट गया।······खून की धारा बह निकली। एक राजपूत ५०-५० को भारी पड़ रहा था। और पत्ता······?पत्ता था······अरे वह रहा पत्ता······अरे वहाँ नहीं वो रहा पत्ता······अरे वहाँ नहीं वह तो उस दिशा की ओर है······ पत्ता······पत्ता···पत्ता सब ओर······ एक पत्ता है या अनेक······अरेरे ऽऽऽऽ रोको······

'जय महादेव' 'हर हर महादेव' 'जय चित्तौड़'

'अल्ला हो अकबर'

अरे रे ऽऽऽऽऽ सारे यवन पत्ते पर टूट पड़े।······वीरों······ आगे बढ़ो ! चित्तौड़ के लाल को बचाओ······भागो···मारो······अरे पत्ते के धड़ से सिर अलग हो गया······अरे धड़ ही लड़ रहा है·····उसमें से रक्त का फौव्हारा निकल रहा है······अरे ये धड़ इधर ही आ रहा है ······अरे इसे रोको······मारो······काट डालो······अरे ये तो नाश कर देगा······ पत्ते का धड़······एक आफत !!

पत्ते का धड़······साक्षात यमराज···

छपाक ऽऽऽ छपाक ऽऽऽऽ

पत्ते के धड़ के तीन टूकडे हो गए ······वीर शान्त हो गया···

और······और युद्ध समाप्त हो गया······

# पुस्तक के लेखक गण

1. डॉ० राजानन्द, सत्यनारायण जी का चौक,
   नया शहर, बीकानेर।
2. श्री सावित्री परमार, व० अध्यापिका
   श्री महावीर दि० जैन ह० सैकेण्डरी स्कूल, सी–स्कीम, जयपुर।
3. श्री प्रेम सक्सेना, १० रतन बाई क्वार्टर, बीकानेर
4. श्री करनीदान बारहठ, वरिष्ठ अध्यापक
   *राजकीय उ० माध्यमिक विद्यालय, झुंझुनू*
5. श्री कृष्ण बिश्नोई, वरिष्ठ अध्यापक,
   जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय, बीकानेर
6. श्री वासुदेव चतुर्वेदी, सहायक अध्यापक,
   माध्यमिक विद्यालय, छोटी सादडी (चित्तौड)
7. श्री जयसिंह चौहान 'जौहरी'
   लीलावत भवन, पो० ग्रा० बाठरडा कला (उदयपुर)
8. सुश्री विमला भटनागर, वरिष्ठ अध्यापिका (गृह–विज्ञान)
   *राजकीय महारानी कन्या उ० माध्यमिक विद्यालय, बीकानेर*
9. श्री विश्वेश्वर शर्मा, श्री कृष्ण निकुंज,
   भटियानी चोहटा, उदपुर (राज०)
10. श्री प्रेमशरण सिन्हा, निजी सहायक,
    कार्यालय निदेशालय, बीकानेर
11. श्री हुलासचन्द जोशी, स०अ०, राजकीय माध्यमिक विद्यालय,
    बिग्गा (वाया श्री डूंगरगढ़, चूरू)
12. श्री शार्दूलसिंह कविया, प्रधानाध्यापक,
    राजकीय जयसिंह उ० माध्यमिक विद्यालय, खेतडी (झुंझुनू)

१३. श्री अफजल खां पठान, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, कांकरोली (उदयपुर राज०)

१४. श्री कमर मेवाड़ी, प्रधानाध्यापक, राजकीय उ० प्राथमिक विद्यालय, बागडौल, पो० भाणा, पं० समिति राजसमन्द।

१५. श्री दिनेश विजयवर्गीय, बालचन्द पाड़ा, बून्दी (राज०)

१६. श्रीमती पुष्पलता पण्ड्या, सहायक अध्यापिका राजस्थान महिला विद्यालय, उदयपुर (राज०)

१७. श्री सांवर दईया, महर्षि दयानन्द मार्ग, बीकानेर

१८. श्रीमती प्रेमकुमारी कौशिक राजकीय कन्या माध्यमिक विद्यालय, बदनोर (राज०)

१९. श्री उदयकिशन व्यास, चड़वों की गली, खाण्डा फलसा (जोधपुर)

२० श्री प्रेमपाल शर्मा, राजकीय उ० माध्यमिक विद्यालय, सेवाड़ी (पाली)

२१. श्री मुरारीलाल कटारिया 'मौजी', प्राथमिक विद्यालय, सिंधी सरायकाय स्थान टिपटा गढ़ के पास, कोटा

२२. श्री सीताराम स्वामी, राजकीय बागला उ० माध्यमिक विद्यालय, चूरू

२३. श्री जगदीश उज्ज्वल, स. अ., रा. उ. मा. विद्यालय लूनकरणसर (बीकानेर)

२४. श्री प्रेम अरोड़ा, १४१ एच. ब्लॉक, श्री गंगानगर

२५. श्री भंवरलाल सुथार 'भ्रमर', ईदगाह बारी के अन्दर, बीकानेर

२६. दयावती शर्मा, प्रधानाध्यापक रा. उ. प्राथमिक बालिका विद्यालय, पुरानी बस्ती, श्री गंगानगर

२७. श्रीमती सावित्री रोहतगी, स. अ. रा उ. प्रा. विद्यालय, भीनासर

२८. श्री भगवती लाल व्यास, विद्या भवन स्कूल, उदयपुर (राज०)

२९. श्री धर्मेन्द्रपाल सिंह भदौरिया, ए–१५, श्री करणपुर (श्री गंगानगर)

३०. श्री 'आनन्द' कुरेशी, जैन मन्दिर के पास (घाटी) डूंगरपुर (राज०)

३१. श्री ईश्वरसिंह 'पथिक', स० अ०, राजकीय उ० प्रा० वि०, पीपोदा